शिवोऽहम्

नारायण स्वामी

शिवोऽहम्

नारायण स्वामी

सांस्कृतिक विज्ञान परिषद्
५ अण्डरहिल लेन, दिल्ली

प्रकाशक
सांस्कृतिक विज्ञान परिषद्
५ अण्डरहिल लेन, दिल्ली
संस्करण : १९७५
मूल्य : बीस रुपए
मुद्रक
रूपक प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

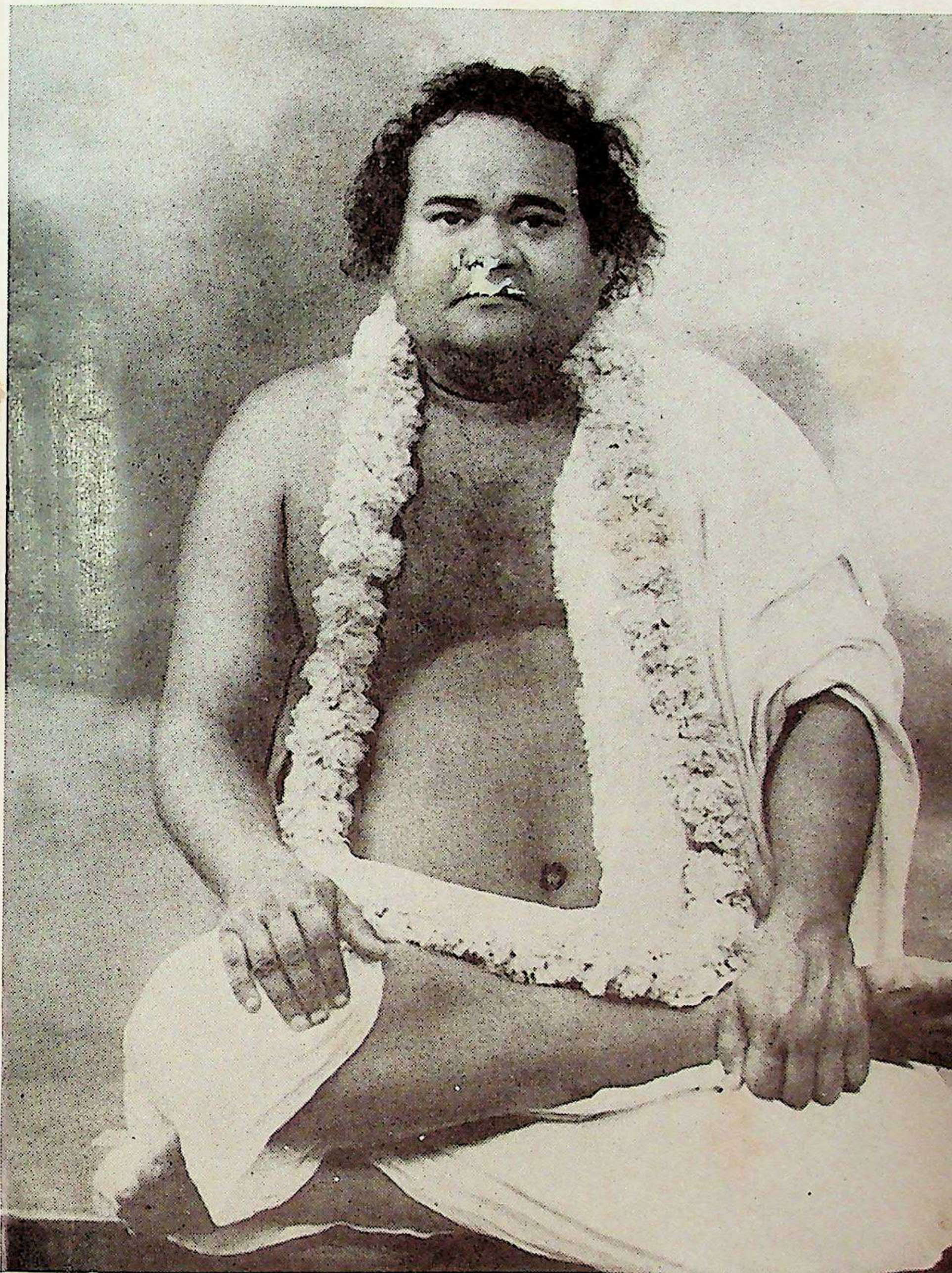

श्री नारायण स्वामी

प्रणति !

परम पावन पूज्य गुरुदेव !

आपके चरण-कमलों में बारम्बार नमस्कार है, जिनको छूकर जीवन आनन्द से भर गया।

आपके नेत्रों के स्नेहजल से भीगकर जीवन अभाव-विहीन हो गया।

आपकी कृपा-दृष्टि के पड़ते ही अनायास परम तत्त्व से परिचय प्राप्त हुआ, कठिन-से-कठिन और गुह्यातिगुह्य भेद भी आपने अत्यन्त सरलता से समझा दिये। हे गुरुदेव ! आपका अनुग्रह जीवन के स्तम्भ के रूप में दृढ़ सहारा बन चुका है।

बचपन से बार-बार गायी भगवान् की स्तुति 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव' का आपके रूप में साक्षात्कार हो गया। माँ का दुलार, पिता का रक्षण, भाई का स्नेह से सब बात समझा देना और सखा की तरह हास्य विनोद और मनोरंजन करना। समस्त विद्याओं के प्रत्यक्ष स्वरूप, आपको पाकर किसी भी धन-वस्तु की इच्छा नष्ट हो गयी। हे देव ! आप साक्षात् शिव-रूप में विराजमान हुए। अवश्य ही किसी पूर्व पुण्य-फलस्वरूप आपके दर्शन और सामीप्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

पहले स्थूल दूरी मन को दुःखी बना देती थी, अब मन की वह स्थिति भी नहीं रही। प्रत्येक साँस में बसी आपकी स्मृति जीवन को सुवासित कर रही है। हे गुरुदेव, सूक्ष्म रूप से तो आप सदा पास हो ही फिर दुःख कैसा। आनन्द देनेवाली आपकी मंगल मूर्ति स्पष्ट सदैव सम्मुख है। प्रारब्धवश जितने दिन यह पंचभौतिक शरीर और है रहा करे, बन्धन तो आपने नष्ट कर ही दिया है।

जीवन में एक सम्बन्ध ऐसा हो जायेगा जो बन्धन-मुक्त करेगा, इसकी १९६२ से पहले मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी। बाबा अक्सर कहते थे, 'अरे ! मैं इस ढाई हाथ के शरीर में कैद नहीं हूँ' और मुझे अचानक अपनी कैद स्पष्ट दिखायी देने लगती थी।

पता नहीं किस पूर्व-पुण्य के फलस्वरूप उनके दर्शन हुए और उनके सामीप्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ। १९६२ में प्रथम बार मैं श्री स्वामी वसन्तानन्दजी के साथ मुजफ्फरनगर गयी हुई थी। उन्हें वहाँ 'रोटरी क्लब' में बोलना था। अगले दिन सुबह स्वामी वसन्तानन्दजी ने कहा, 'मैंने सुना है यहाँ एक अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा वाले नारायण स्वामी रहते हैं। ज़रा पता तो करवाओ वह आजकल यहाँ

हैं या नहीं ? अगर हुए तो शाम को दर्शन करने चलेंगे।' मैंने अपनी बहन के मुन्शीजी से कहा, 'कृपया पता करें।' दोपहर तक आकर उन्होंने बताया, 'महाराज आजकल यहीं हैं, आप लोग प्रसन्नतापूर्वक आ सकते हैं।'

लगभग साढ़े चार-पांच बजे हम लोग 'वेदपाठी भवन' पहुँच गये। उस दिन का दृश्य आज भी आँखों के सामने है। स्वामीजी एक विशाल कमरे में, एक किशाल तख्त पर, जिसकी एक तरफ की लगभग पूरी लम्बाई में पुस्तकें चुनी हुई थीं, विराजमान थे। अत्यन्त सौम्य चेहरा। दायें हाथ में बीड़ी थी; वे बीच-बीच में उसको कश लगा लेते थे। लगभग डेढ़ या पौने दो फुटा एक कलम उनके बायें ओर पड़ा था। दो-तीन सज्जन बैठे हुए थे।

चरण-स्पर्श करने के पश्चात् उनके तख्त के सामने पड़े पलंग पर स्वामी वसन्तानन्दजी और मैं बैठ गये। कोई कुछ बोला नहीं और वातावरण भारी-सा हो गया। चुप्पी तोड़ते हुए संकोच से मैंने कहा, 'रानी बहन से आपके विषय में बहुत सुना था; दर्शन की उत्कट इच्छा थी।' इतना सुनकर स्वामीजी मंद मुस्कान से बोले, 'अरे रानी तो साधु-संन्यासियों की होल सेल डीलर है; जैसे साधु की ज़रूरत हो वैसा बता देती है।' यह सुनते ही हम सब हँस पड़े और बड़े सहज-स्वाभाविक रूप से बातचीत होने लगी। वसन्तानन्दजी के कहने पर स्वामीजी ने अपना पुस्तकालय दिखलवाया। लगभग प्रत्येक विषय पर गोदरेज की अलमारियों और लोहे के विशाल सन्दूकों में सुरक्षित हज़ारों नयी और प्राचीन पुस्तकें दिखायी दीं। एनाॅटाॅमी पर भी पुस्तकें देखकर मैं विस्मित हुई। पुस्तकें केवल संस्कृत और हिन्दी में ही नहीं, अंग्रेज़ी और उर्दू में भी थीं। वेद, उपनिषद्, संहिताएँ, पुराण, बाइबिल, ग्रंथसाहब, कुरान और न जाने क्या-क्या। ऊपर की मंज़िल में, एक अलमारी उर्दू की पुस्तकों से भरी थी। पुस्तकों के अलावा भी वहाँ बहुत-कुछ दर्शनीय था। एक विशाल त्रिशूल (न जाने बाबा उसे कैसे लेकर घूमते थे), एक विशाल कमंडल, एक विशाल हुक्का। उनके स्थान पर जो भी चीज़ दिखी सब-कुछ विशाल ही थी।

दो घंटे के बाद हम लौट आये। लगभग दो वर्ष बाद एक संध्या को रानी बहन ने आकर कहा, 'स्वामीजी आये हुए हैं। तूने कई बार उनसे मिलाने को कहा है, अभी चल ! उनका पता नहीं, सुबह उठते ही कहीं चल दें।' हम तुरन्त चल दिये। रात्रि के लगभग साढ़े दस बज रहे थे। राठीजी के निवास-स्थान, शक्ति-नगर में दरवाज़े के बाहर एक खाट बिछी थी और बाबा सो रहे थे। एक बार मैं ठिठकी और सोचा वापस चलें; लेकिन रानी बहनजी बहुत वर्षों से उनसे परिचित थीं, नहीं मानीं। उन्होंने सोते हुए स्वामीजी के चरण छुए और कहा, 'बाबा उठो ललिता को आपसे मिलाने लाई हूँ।' बाबा तुरन्त ही उठकर बैठ गये और हमें

देखकर थोड़ा हँसे। अत्यन्त प्रेम से 'आओ, आओ बैठो' कह कर कुर्सियाँ डलवायीं और तकिये के नीचे से अपना स्टील का डिब्बा निकाल एक बीड़ी सुलगाकर कश खींचा और कुशल-क्षेम पूछा। मैं टकटकी बाँधकर उन्हें देख रही थी। न जाने क्यों मन बरबस उनकी तरफ खिंचा जा रहा था। बहुत अच्छा लगा उनसे बात करके। अगले दिन रानी बहन ने बाबा के साथ मुझसे अपने घर जीमने को कहा। मैं दूसरे दिन ११ बजे के लगभग वहाँ पहुँच गयी। रानी बहन ने मेरी सिफारिश करते हुए कहा, "बाबा इसे कुछ ज्योतिष सिखाइए।" करीब आधे घंटे मौन बैठने के बाद बाबा बोले, "बता क्या-क्या सीखा है? कौन-कौन-सी पुस्तकें पढ़ी हैं?" मैंने मानसागरी, लघुपाराशरी, बृहत्पाराशर, होराशास्त्र इत्यादि कुछ पुस्तकों के नाम बताये। फिर पूछा, "लग्नारूढ़ निकालना आता है?" 'ना' कहने पर बोले, "अच्छा ले देख। मैं ज़रा सख्त किस्म का अध्यापक हूँ। एक कुंडली का मैं बताऊँगा, दूसरी का तुझे निकालना होगा।" काफी आसान लगा। मैंने ठीक-ठीक निकाल दिया। बोले, "यह तो आसान था। अब नक्षत्रारूढ़ निकालना बताता हूँ; इसे निकालकर दिखाना।" एक नक्षत्र फार्म निकाला और उसका आरूढ़ निकालना बताया। वह काफी मुश्किल लगा। मैं पूर्णरूप से सचेत होकर बैठी थी और मन-ही-मन प्रार्थना कर रही थी कि ठीक-ठीक निकाल पाऊँ। उस वक्त तो मैंने निकाल दिया पर घर आकर कोशिश करने पर उलझन में पड़ गयी। फिर दूसरे दिन उनसे जाकर कहा, "मैं नक्षत्रारूढ़ निकालना भूल गयी हूँ।" वड़े सहज भाव से बिना कुछ कहे उन्होंने फिर से बताया।

दो-चार दिनों में ही लगा कि न जाने कब का परिचय है। उनके पढ़ाने में, समस्याओं का समाधान करने में बड़ा ही आनन्द आ रहा था। जिस विषय पर भी जिक्र छिड़ता बाबा जड़ तक जाते थे। संगीत की उनकी जानकारी अद्भुत थी। बड़ी इच्छा हुई उनसे गाना सुनने की; पर संकोचवश कहा नहीं जाता था। वह शायद समझ गये। एक दिन बाजा लेकर पीलू राग में अत्यन्त सुन्दर भजन गाकर सुनाया। बजाने की कला की दक्षता तो जिन लोगों ने देखा है, जानते हैं। राग बजाते समय आँखें बन्द करके अथवा बाजे पर अपना चादर चार तह करके डालकर बजाते थे और एक भी जगह उँगली गलत नहीं पड़ती थी।

पढ़ने योग्य पुस्तकों के बारे में जब पूछा तो प्रथम पुस्तक उन्होंने मोतीलाल बनारसीदास के यहाँ से 'त्रिपुरारहस्य' का ज्ञान खंड खरीदवाया और पढ़ने को कहा। समाप्त कर लेने पर स्वयं बैठकर उसका सार समझाया। इसके बाद तो पता नहीं कब वह हृदय में ऐसे समाने लगे कि हर समय उनकी सौम्य मूर्ति का ध्यान बना रहता। गुरु, पिता, माता, सखा सब रूप एक रूप में समन्वित हो रहे थे। वर्षों से पितृ सुख से वंचित हृदय उनके स्नेह से सिंचने लगा। उनका 'बेटा'

कहते ही आँखें भर आती थीं। वह भी शायद देखकर समझ रहे थे और जीवन की सारी रिक्तता को जैसे भर देना चाहते हों।

'बोधसार' पढ़ने मैं जाड़ों में मुजफ्फरनगर गयी। उस सप्ताह का तो वर्णन नहीं किया जा सकता। बाबा सुबह १० बजे से दोपहर के लगभग ३ बजे तक एक सुर में गम्भीरता से पढ़ाते चले जाते थे। समय का भान ही नहीं होता था। तबका एक-एक क्षण अब भी सोचती हूँ तो आनन्द की गाढ़ अनुभूति से भरा लगता है। जैसे बाबा कुछ जादू जानते हों; जो बात समझने में कठिन लगती थी, उसे दृष्टि-मात्र से समझा देते थे।

अधिक कहना व्यर्थ है। उनके अपनेपन ने मेरा अपनापन नष्ट कर डाला। अन्तिम बार उन्हें मैं जबरदस्ती अपने घर ले आयी थी। आश्चर्य तो उन्हें देखकर बार-बार होता था पर उस बार तो मैं बिलकुल विमूढ़ हो गयी। गीता ने कहा था कि बाबा की तबीयत ठीक नहीं है। दो बार पहले छोटे-छोटे दो एपीसोड हो चुके थे और एक पूरा ब्लैकआउट हो चुका था। उन्होंने डॉ० भान साहब को बुला कर शाम को दिखाया। ब्लड प्रेशर काफी बढ़ा हुआ था। जनवरी का महीना था और बहुत ठंड पड़ रही थी। रात को एक दवा दी जो उन्होंने खाली। किसी किस्म की शिकायत उन्होंने नहीं की। बहुत पूछने पर भी लक्षणों का कुछ पता नहीं चल सका।

सुबह लगभग साढ़े छह बजे मैं चाय लेकर गयी तो पलंग पर बैठे बीड़ी का कश लगा रहे थे। चेहरे से पूर्ण स्वस्थ। चाय बनाकर दी तो मन्द मुस्कान से बोले, "ला ले आ जो पढ़ना हो। अभी तो नहाने-धोने में वक्त होगा। पढ़ ले जो पढ़ना है।" पातञ्जलि के योगदर्शन के विषय में कुछ बहस कर बैठी, तो हँसकर बोले, "तू क्या इसे लास्ट वर्ड इन योगा समझती है ?" मैंने कहा, "बाबा ! मैं क्या जानूँ 'लास्ट वर्ड' क्या है। मुझे तो यह बड़ा शुष्क मालूम पड़ता है।" अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले, "सूत संहिता पढ़ाऊँगा तुझे।" इससे पहले जब आये थे तो खुद ही 'सूत संहिता' खरिदवा गये थे; पर उसमें हिन्दी भाष्य नहीं था। काफी बड़ा ग्रन्थ था; मैं देखकर सहम गई थी। उस समय भी उन्होंने कहा था, "फिक्र मत कर। न हुआ तो हिन्दी भाष्य मैं खुद तुझे पढ़ा दूंगा।" लेकिन वह शुभ दिन नहीं आया। जब दिल्ली से चले थे तो उनके मोटर में बैठते समय मैंने चरण स्पर्श किया। वही आखिरी प्रणाम हुआ। आखिरी आशीर्वाद तो कैसे कहूँ ! दो महीने बाद गीता ने बनारस से सूचित किया, "बाबा नर्सिंग होम में हैं, अचेत हैं। मैं कलकत्ता जा रही हूँ।" लगा जैसे किसी ने प्राण खींच लिये हैं। हालाँकि उस अन्तिम वर्ष में कभी-कभी लगा था कि बाबा अब साथ छोड़कर जाने वाले हैं पर इसका पूर्ण रूप से एहसास नहीं हुआ था। अचानक सब वेदान्त व्यर्थ लगने लगा। उनकी एक-एक

बात याद आने लगी। अगले दिन सुबह मैं भी कलकत्ता पहुँच गयी। वही उनके अन्तिम दर्शन थे।

बाबा के 'शिवोऽहम्' के विषय में कुछ लिखना मेरे लिये धृष्टता है; पर कुछ न कहना भी असम्भव हो रहा है। उनके सामीप्य में बिताये जीवन के लगभग ६ वर्ष मेरे लिये अत्यन्त कीमती हैं। आनन्द की जो अनुभूति उनके पावन चरणों में बैठकर हुई है वह चर्चा का विषय नहीं है, केवल वे कुछ लोग इसे थोड़ा-बहुत समझ सकते हैं जिनके जीवन की मरुभूमि उनकी स्नेह-दृष्टि से सींची गयी है। जिस 'शिवोऽहम्' में सारे श्रुति, स्मृति, वेद, पुराण का सार दिया गया हो, निगमागम शास्त्रों का जो निचोड़ हो उस पर किसी प्रकार की टीका करना मेरे लिये अकल्पनीय है। जिन व्यक्तियों का परिचय उनके विस्तृत पांडित्य से हुआ है आशा है, वह मुझसे सहमत होंगे। देश और विदेश के बड़े-बड़े विद्वान् उनके मुख से वेद की एक भी ऋचा समझने को इच्छुक रहते थे।

मैं तो केवल उन्हीं के मार्गदर्शन के आधार पर इतना कहूँगी कि जीवन का जो अनुभव हुआ वह 'शिवोऽहम्' में लिखा है और वही उन्होंने हमें बताया। कैसी रही होगी उनकी ऋतम्भरा बुद्धि जो इतनी अल्प आयु में ऋत को पहचाना। सारे आडम्बरों से रहित उनका जीवन सत्यम् शिवम् सुन्दरम् था। वास्तव में वे साक्षात् शिवरूप थे। परम् शिवम् की स्तुति-कुसुमाञ्जलि पढ़ाते वक्त उनके नयनों से बहती अश्रुधारा आज भी भूलती नहीं है जिसे पोंछने का उन्हें होश नहीं था। जिस मस्ती का संदेश वे देते थे उनका जीवन उससे भरा हुआ था। योगी हो या भोगी, राजा हो या बन्दी, ज्ञानी का यही लक्षण वे बताते थे। 'शिवोऽहम्' की प्रति जब हाथ में आयी और उसे पढ़ा तो बहुत आश्चर्य हुआ; होना नहीं चाहिये था फिर भी। १८ वर्ष की आयु में लिखा गया यह दर्शन-काव्य वही सब कह रहा था जो लगभग ४० वर्षों बाद बाबा के मुख से सुनने को मिला। ज़रा-सा भी फर्क नहीं। १८ वर्ष की नन्ही आयु में विचारों की परिपक्वता मेरी समझ से केवल पिछले जन्म के संचित पुण्यों का प्रमाण हैं 'शिवोऽहम्' की प्रथम पंक्तियाँ :

> पूर्वोन्माद का जर्जर परिधान अभी सी लूंगा
> अबके उन्माद हुआ तो तुझको अवस्त्र कर दूंगा।

ठीक यही किया बाबा ने। शुद्ध ब्रह्म को सारे मैल रहित रूप से जाना।

बिना आगम शास्त्रों के अध्ययन के 'शिवोऽहम्' की भाषा का गूढ़ तत्त्व पाठकों की समझ में आना कठिन है।

उनकी पावन मूर्ति हज़ार रूपों में सामने आती है। कोई भी समस्या जब भी उनसे कहीं अत्यन्त स्नेह से उन्होंने कहा, कितनी बार कहा, "अरे अपने को सीमित

तूने स्वयं कर रखा है, ज़रा इस सीमा से बाहर जाकर देख कोई समस्या नहीं रहेगी।" उन्हीं शब्दों को ठीक वैसे ही ४६ साल पहले लिखे 'शिवोऽहम्' में पाकर आँखें भीग उठती हैं।

उनका शब्द-चयन अत्यन्त भ्रामक हो सकता है, अगर पाठक का उनकी 'बाला' त्रिपुर-सुन्दरी 'बालाम्बिका' से परिचय नहीं है। उनकी प्रियतमा, उनकी आराध्या त्रिपुरेशी है। उनका शिव 'सुन्दर' है, और प्रेम का मार्ग ही उन्हें भा गया है। यही मार्ग अन्त तक निभाया। उनके सम्पर्क में आने वाला कोई उससे वंचित नहीं रहा।

अपने काव्य के बारे में उन्होंने स्वयं लिख दिया है कि कलियुग का पुराण यही है। अक्सर बाबा पूछते थे,"उसे न्यायाधीश मानती हो या करुणाधीश"— मैं सोच में पड़ जाती थी। देखने का एक अन्दाज़ था; और ठीक था। प्रभु से दया-दृष्टि की ही याचना है। न्याय माँगने लगे तो न जाने क्या हो।

"सत्कर्मों से ही बस मैं यदि शुभ लोकों को पाऊँ।
तो ईश्वर की करुणा का किसको क्या लाभ बताऊँ॥

यही ईश्वर की करुणा का लाभ बता-बताकर द्वैत नष्ट कर डाला। पूर्ण समर्पण की ओर इशारा है। ईश्वरेच्छा में अपनी इच्छा को लय करके सहज भाव से जीने की शिक्षा—-

दर्पण कर में आया तो ईश्वर को कर में देखो।
व्यापकता को विस्मृत कर यों स्वीय वेष में देखो॥
'आवरण स्वीय मति में है मति से तू स्वत्व बचा ले।
उस पर आवरण कहाँ है अपना आवरण हटा ले॥

कहीं जाने की ज़रूरत नहीं। अन्तर्मुखी हो जाने का सरल उपाय। केन उपनिषद् का सार सरल शब्दों में समझाया हुआ। जिस दिन दर्पण कर में लेकर उस ब्रह्म का दर्शन होने लगेगा 'शिवोऽहम्' का पढ़ना सार्थक हो जायेगा।

ललिता गुप्त

५ अण्डरहिल लेन
सिविल लाइन्स
दिल्ली-१

शिवोऽहं

○

पूर्वोन्मादका जर्जर परिधान अभी सी लूंगा।
अबके उन्माद हुआ तो तुझको अवस्त्र कर दूंगा॥
दर्शनकी उत्कट इच्छा है किन्तु प्रभा क्यों पेखूं।
है उचित दृश्यसे पहले मैं स्वीय दृष्टिको देखूं॥
है सुधा ढूंढ़ता फिरता तो कर पूरी अभिलाषा।
कविता करने लग थोड़ी ले सीख हमारी भाषा॥
ज्ञानीका ठौर ठिकाना तुम पूछ रहे क्या होगा।
प्रेयसी-भवन[1], मदिरायल[2], ब्रह्मत्व तीसरा होगा॥
सुन्दरी सुरा लाती हो सुन्दरता-पूर्ण सुरा हो।
सौन्दर्यवान पेयी हो तव शिवकी पूर्ण कृपा हो॥
मृग नयनोंके द्रष्टा हैं भ्रम रहे केशके वनमें।
निर्लेप हुए हैं जगसे तप-युत हैं प्रेम्य सदनमें॥
यह प्रेम क्रिया ही ऋतु है यह कर्मकाण्ड कहलाता।
प्रभुका हो वा प्रेयसिका दोनों प्रकार सुखदाता॥

---

१. इडापिङ्गलयोः प्राणान् सुषुम्नायां प्रवर्तयेत्।
सुषुम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः॥
तयोस्तु सङ्गमे देवैः सुरतं नाम कीर्त्तितम्।

२. जिह्वया गलसंयोगात् पिबेत्तदमृतं तदा।
योगिभिः पीयते तत्तु न मद्य गौडपैष्टिकम्॥ —गन्धर्वतन्त्र

यौवन मदिराका मद भी कैसे उतारपर आए।
कोई मदिरा-नयनी ही इसको समाप्त कर जाए॥
हैं शालिगराम शशीमें वा इस कपोलपर तिल है।
वैष्णवी क्रिया याज्ञिकको वेदोपरान्त क्या खिल है॥
यदि स्वीय प्रियाके मनको तनको न स्ववश्य करूँगा।
तो स्वर्गलोक जा करके मुख भी दिखला न सकूँगा॥
अणुका प्रकाश भी रविसे ईर्ष्या करता जाता है।
उस छवि में वह सम था तो अब छिपता भी जाता है॥
मेरे घर वह आयेगी मांगलिक शकुन होता है।
इतना निश्चय है फिर भी विश्वास नहीं होता है॥
सुख-दुख उपभोगादिक का वह अनुभव करनेवाला।
है प्राण नहीं इस तनमें क्यों रोवे हँसने वाला॥
अद्भुत अनुरोध किया था मिस भी विचित्र निर्मित है।
आनेको तुम आजावो पहला प्रेमी जीवित है॥
तन मन धन प्राणादिक सब उसके बतलाता तू है।
तनु अश्रु पुंज उसका है क्यों इसे बहाता तू है॥
प्रत्येक विज्ञ वेदोंका कितना सुन्दर कहता है।
सत और असतसे आगे यह प्रेम तत्व रहता है॥
प्रेयसी भवनमें मनमें कुछ बात नहीं कह पाती।
दीपक यद्यपि जलता है पर शिखा काँपती जाती॥
विरहोच्छवासोंसे मैंने यह हृदय किया था काला।
प्रेमाग्नि हाय तैंने तो मुझको शीतल कर डाला॥
ऐसी समाधि धारी थी जिसमें न प्रणाम नमन थे।
घरका न गया कुछ भी तो अर्पण यद्यपि तन मन थे॥
उसके घर क्यों जाता था गलियाँ ही ले जाती थीं।
अद्भुत सुगन्धियें मुझको प्रति पद पर आती थीं॥
रमणीके मन मन्दिर तक कल्पने तुझे जाना है।
तू हृद्गत मत हो जाना तुझसे कुछ मँगवाना है॥
रखले पवित्रता मनमें निशिमें देखा जावेगा।
इन त्याग प्रतिज्ञाओंसे क्या संयम आ जावेगा ?
मूर्खता हन्त इस मनकी जा-जाकर आ जाती है।
यह मिथ्या दृष्टि इसे लो दर्शक करने आती है॥

इस प्रणय पंथकी गाथा पूरी सुन कर गाना है।
बस एक बार जाना है फिर पथ ही बन आना है॥
सुन्दरियोंका प्रेमी हो सुन्दर होता जाता हूँ।
उनका सौन्दर्य उन्हींको दिखलाने मैं जाता हूँ॥
हो सान्त नारिका प्रेमी देखो अनन्त यह ही है।
प्रत्येक प्रमाण मिला लो निश्चय वसंत यह ही है॥
रमणीकी यदि वेणीमें वह भूप परिक्षित फँसता।
तक्षक क्या शेष स्वयं भी उसको न प्रलय तक डँसता॥
यमदेव शीघ्रता क्या है ठहरो स्वामी हो जाऊँ।
यद्यपि न साथ जावैगी पर एक रात सो जाऊँ॥
क्या किया कुछ नहीं केवल अपना मुख कुछ मोड़ा है।
कितनी साधारणतासे हृद्दर्पण यों तोड़ा है॥
यह हृदय जिसे दे डाला उसको रक्षक माना है।
अपनेसे अधिक उसे कुछ विश्वस्त आज जाना है॥
दुखसे ही तो जीवन है सुखका तो नाम मरण है।
उत्पत्ति जहाँ हैं दुख है सुख हेतु विनाशी रण है॥
जिसका संस्कारोंके वश धन कभी चला जाता है।
तव मान-ज्ञान धर्मादिक सबको ही ले जाता है॥
युग पदकी गतिसे पलमें कलियुगमें सतयुग छाया।
पद है वा युगके पद हैं आनंद बहुत ही आया॥
मांगलिक प्रभात बयारों से द्वेष बुद्धि रखना है।
उस समय उठाती है यह जिस समय अमृत चखना है॥
शिवके ललाट पावकसे मैं कामतुल्य कहता हूँ।
रतिसे फिर जी जाऊँगा ले मृत्यु दंड सहता हूँ॥
बस एक दोषसे मुझको अपराधी कर रक्खा है।
कहते हैं इसके मनमें इसकी ही क्यों इच्छा है॥
पहले क्या था जब मैंने सुन्दरियोंको ठुकराया।
अब प्रेम स्वयं पृच्छक है प्रेमी कैसी तव माया ?
आकर्षण वशीकरणको बस व्यर्थ मानता मैं हूँ।
मनको लख उच्चाटनको कुछ सार्थ जानता मैं हूँ॥
मेरी विशिष्टता तुझमें सौन्दर्य हुई है आकर।
फिर क्यों कृतघ्नता मुझसे कुछ उत्तर दे न कृपाकर॥

विज्ञोंको डुबकी देती अज्ञोंको पार लगाती।
इस प्रेम पंथमें रमणी सरिता है बनकर आती ॥
सत्कुल विद्या मधुभाषण वा सदाचार जो भी हैं।
धनसे सब शोभा देते निर्धनके व्यर्थ सभी हैं ॥
प्रत्यक्ष हृदयपर मेरे रमणी है बाण चलाती।
पर वस्तुतः हृदयमें बैठी निज बाण स्वयं है खाती ॥
इस शीत वायुकी चिन्ता किसको उस क्षण होती है।
रोमाञ्च वस्त्र बन जाता जब वह विवसन होती है ॥
उस चन्द्रमुखीकी आभा कब कहनेमें आती है।
चाँदनी पूर्णिमाकी भी लख लज्जित हो जाती है ॥
ब्रह्माने हमसा मन्त्री कब आदि सृष्टिमें पाया।
जैसा भी उसने चाहा सब अस्त व्यस्त बनाया ॥
यमने कुसमयमें आकर सब प्रेम तत्व बिसराया।
फिर मौन शान्त रहनेका प्रेमीको पाठ सिखाया ॥
जीवन वा प्राण यही हैं दो हाय धरोहर मेरी।
तुझमें अपनापन लखकर कर रहा इन्हें मैं तेरी ॥
हो सावधान अधरामृत मदमत्त हुए मदिरा पी।
यह पान भाग्यमें पाया चातक भी चिल्लाया पी ॥
सूरज इतना तपता है फिर भी समुद्र अव्यय है।
तेजस्वीके तपसे भी केवल क्षुद्रोंका क्षय है ॥
चुम्बन इच्छा पर ना ना सुनकर विचार सुखकर थे।
मैं एक शब्द ही समझा पर उसके दो अक्षर थे ॥
यदि प्राणप्रिया रूठी है तो आतम-भाव चिन्तन कर।
जगसे यदि ठोकर खाली जगदीश्वरका अर्चन कर ॥
कुच कच्छप सम सिमटे हैं पर केश शेष क्रोधित है।
उसका रण कौशल लखकर भयभीत चित्त भी स्थित है ॥
तेरे कायर प्रेमी हैं तू कायर हो जावेगी।
फिर हम जैसे शूरों के मन में कैसे भावेगी ॥
प्रतिद्वन्द्वीके लोहितसे जिसका न तिलक होता है।
वह प्रेमी क्या गर्दभ हैं उनका बोझा ढोता है ॥
है जीवन क्षेत्र हमारा जिसमें है बीज विरतिका।
पर कौन भेद पावेगा अपना वा अपनी गतिका ॥

पढ़ता था वेद ऋचाएँ लो गले आ लगी बाला।
मेरी तो क्या इच्छा थी ईश्वरने क्या दे डाला ॥
चिन्ता का भार अधिक था सन्तोष और चढ़ बैठा।
इन भारों से बचने को मैं प्रेम गुफा में पैठा ॥
करवट लेते ही मुझको जाने क्या हो जाता है।
बिन स्वप्न चरण रमणी का छाती पर आ जाता है ॥
द्यौ का पाताल बनाया पर भूमि नहीं लख पाई।
अब ज्ञान हुआ, सम रहता तो था सब कुछ सुखदाई ॥
धनवानों की ही अब तक सुन्दरता होती आई।
निर्धन ने किस रमणी से अब तक है प्रीत लगाई ॥
हृन्नौका में भृकुटी के बाणों से छिद्र हुआ है।
अब निश्चय यह डूबेगी यह प्रेम समुद्र हुआ है ॥
कुछ स्वार्थ देख देता हूँ वह स्वयं नहीं लेती है।
दक्षिणा बिना क्या देवी भक्तों को कुछ देती है ॥
पंडित है शूर चतुर है तुझमें गुण हैं, हैं जितने।
पर कह तो तेरे कुल में सौन्दर्य निहित थे कितने ॥
बिनु काष्ठ तृप्त पावक हो निधि तुष्ट बिना सरिता के।
पर स्त्री न तृप्त होती है बिन कामी वा कविता के ॥
कामी होकर भी स्वामी मुख श्रुति से कब मोड़ेंगे।
फुंक कर भी शंख महाशय श्वेतता नहीं छोड़ेंगे ॥
शशि मुखी मिलें पतितों से पर्वत पर जल बहता है।
बहुधा हमने देखा है कृपणों के धन रहता है ॥
यदि चित्रगुप्त से ब्रह्मा कह दें तो हम बलि जायें।
सौन्दर्य प्रेम घटना के बंदी सब छोड़े जायें ॥
हित चिन्तक शिक्षक लखकर दुख मेरे घर आते हैं।
हितकर्त्ता शिक्षणकर्त्ता आपत्ति सदा पाते हैं ॥
सुन्दर कपोल चुम्बन को वह केश पाश बढ़ता है।
है सर्प डस रहा उसको तुझको क्यों विष चढ़ता है ॥
रावण का ही रिपु होकर वह राम हो गया ईश्वर।
पर था महत्व रावण में जो अरि भी था जगदीश्वर ॥
सौन्दर्य आज विजयी है अन्ततः युद्ध था दो का।
दुर्बल मन ने भी देखो कुछ दिन तो उसको रोका ॥

था जिसने वैद्य बनाया उसके प्रति यह इच्छा है।
इसका ऋण व्यर्थ रहे क्यों रोगी हो तो अच्छा है॥
वह रूप तथा धन कैसा जिसकी न कीर्ति हो जगमें।
विद्या, मति, मुक्ति सहेली सेविका इन्हें हैं मगमें॥
है ज्ञान मुझे ही मेरी उस नीरव अँधियारी का।
दिन रात एक थे जिसमें था वेष विपिनचारी का॥
जिस क्षण उसको देखा था उसने तत्काल बुलाया।
मुख में पानी भर आया नयनों ने नीर वहाया॥
केवल इतना ही तो है जग वाले स्त्रैण कहेंगे।
मैं रमणीहीन हुआ तो बिन क्लीव कहे न रहेंगे॥
एकान्त स्थान निशि बेला तुम पति रुष्टा लघुवय हो।
है महा मूर्खता अब भी यदि पर-पुरुषोंका भय हो॥
प्रत्युपकारों से उनके अब तक हम भी डरते हैं।
आपत्ति स्वयं देते हैं फिर मुक्त स्वयं करते हैं॥
सुन्दरियों के हृदयों का विश्वास नहीं करता हूँ।
यह मूल मात्र कारण है जो कभी नहीं मरता हूँ॥
हैं स्वीय प्रेम्य के रिपु भी प्रेमी के सुहृद अपर हैं।
पर एकाकी भी प्रमुदित फिरते विरले ही नर हैं॥
तनसे चिपटाकर सो जा तब जग जाने बरता है।
कोठे चढ़ तो कौवा भी लख लख काँ-काँ करता है॥
सौन्दर्य तथा धन दो ही सर्वार्थ सिद्धि लाते हैं।
हम तो धनियों, सुन्दरियों दोनों के ही जाते हैं॥
आशा जिसकी बन्दी है अपना पति निकट वरैगी।
कारागृह में जन्मी है कुरु कुल को नष्ट करैगी॥
सत प्रकृति-पुरुष की पूछो कब से यह हुआ मिलन है।
इन सत्ताइस कल्पों में उनका केवल चुम्बन है॥
माधुर्य लवण में भरकर नीरस को सरस दिखाया।
मृगतृष्णा ने देखो तो सिंहों को भी भटकाया॥
उर अपना अति विस्तृत है लो कुछ महिमा कह जायें।
संकल्प बनें कितने ही तारे होकर रह जायें॥
अब चाहे कोई पूछे उत्तर में यही कहूँगा।
अब तक जीता रहता था मरता भी कभी रहूँगा॥

आँसू को तर जाने का यद्यपि प्रयास करती है।
जल की ऐसी धारा से निद्रा भी तो डरती है॥
लखकर उस चन्द्रमुखी को उस हेतु सकाम हुवा हूँ।
यदि वाल्मीकि सच्चे हैं तो पल में राम हुवा हूँ॥
अनजाने से कुछ भय है लखकर कुछ क्रोध हुवा है।
सुनकर अब इन्द्र धनुष-सा रमणी का बोध हुवा है॥
तेरे कपोल पर लख ले अंकित वे नहीं हुये हैं।
जितने भी थे सब चुम्बन बलिहारी चले गये हैं॥
सोना ही हो तो सोलूँ पर फिर भी जाग पड़ूँगा।
सच्ची अनन्त निद्रा हित इस जगसे सदा लड़ूँगा॥
पशु पक्षी क्या जलचर भी इस ऋतुमें प्रणय दिखाते।
धिक है हम मानव होकर वैराग्य भाव हैं लाते॥
अपने बल का ही बल है अन्यों की क्या आशा है।
यद्यपि मैं सौम्य नहीं हूँ पर कुछ सुन्दर भाषा है॥
मैं निःशरीर हूँ यह ही सुनकर कुछ आनंदी हूँ।
अन्यथा रुधिर चर्मादिक कारागृह का बंदी हूँ॥
जो इच्छा हो वह कर ले उसकी प्रति-कृति सहता है।
चाहे ऐसे वा वैसे मन प्रमुदित ही रहता है॥
भवितव्य यही तो था बस जो आज हो रहा जग में।
यदि निष्प्रयास होता तो कंटक क्यों चुभते मगमें॥
अनुगमन करे जग मेरा मैं ही अन्तर्यामी हूँ।
सम्राटों का, देवों का, सुन्दरियों का स्वामी हूँ॥
है चन्द्रग्रहण पर वर्जित सब दोष ढके देता हूँ।
मदिरा पीना निन्दित था अधरासव पी लेता हूँ॥
प्रियतमे व्यर्थ ही तू तो मेरे कारण रोती है।
इस भाग्य-क्षेत्र में मेरे मुक्ताफल क्यों बोती है॥
यद्यपि कुछ जगवालों को इसने उन्मत्त बनाया।
तेरा श्रृंगार मुझे तो आकृष्ट नहीं कर पाया॥
योगी हो वा भोगी हो राजा हो वा बंदी हो।
ज्ञानी का यह लक्षण है कम से कम आनंदी हो॥
छत से तो आँखों द्वारा नित ही कहती थी आवो।
जब आज घुसा हूँ घर में तब कहती है कुछ गावो॥

वनमें तप करने बोलो एकान्त हेतु क्यों जावैं।
वे स्थान उजड़ वन होंगे जिसमें हम क्षण रह पावैं॥
पावक स्थित रहना चाहैं ईंधन लाना ही होगा।
हर भाँति मुझे रमणी को यों बुलवाना ही होगा॥
जिसका सुख क्षण-भर ही हो जो स्वत्व नहीं खोती है।
अभिलाषासव हो तो हो वह सुरा नहीं होती है॥
यह तो मेरी पावक है जब चाहूँ जल सकता हूँ।
पर मैं मुझसे ही बचकर किस भाँति निकल सकता हूँ॥
मैं पथिक ब्रह्मपथ का था क्षण-भर में ही प्रस्थित हूँ।
चित्ताकर्षक छवि लखकर पथस्मृत है फिर भी स्थित हूँ॥
प्रस्थान - त्रयी देशाटन भाष्यकृत बाल्य मैं ही हूँ।
नारायण कहलाकर भी शंकराचार्य मैं ही हूँ॥
नभ की यह अभिलाषा थी मैं शून्य रहूँ जीवन-भर।
रह गई चमककर क्षण ही देखो वह बिजली बनकर॥
कुछ मित्र प्रश्न करते हैं फिरती वह क्यों जग-भर में।
मैं चन्द्र तुल्य हूँ मेरी चन्द्रिका रहे क्यों घर में॥
अब जल्पक ही ज्ञानी हैं धननाशी ही दानी हैं।
चिन्तित जन ही ध्यानी हैं अपमानित ही मानी हैं॥
शिव को उन्मत्त सुना है उनसे कुछ मद लाऊँगा।
अपने मद में मतवाला कैलास चला जाऊँगा॥
सौन्दर्य गन्ध कोमलता यद्यपि न यहाँ मिलती है।
सब पुष्प व्यर्थ हो जाते जब हृदय कली खिलती है॥
हे पंच तत्व के प्रेमी क्या शिव चित्र लखता है।
इसमें चित्रित ही क्या है प्रति चिह्न रंग चखता है॥
इस प्रेम व्योम में देखो अब तक भी मैं रक्षित हूँ।
आधार नहीं है कुछ भी फिर भी निज पद पर स्थित हूँ॥
पुष्पों में उद्यानों में तू व्यर्थ देखता क्यों है।
प्रेमी है तो प्रियतम को सर्वत्र भेजता क्यों है॥
कुल जगत धर्म विस्मृत है कुछ आनन्द भरा है।
इस वृषभ स्कन्ध पर इतना थोड़ा क्यों भार धरा है॥
है नियम विश्व का ऐसा जो ज्ञात न हो आता है।
दानी निन्दित रहता है डाकू गौरव पाता है॥

जब मिली तभी बातों से सेवा से कर ली चेरी।
यह भाग्य तथा कर्मों से अन्ततः हो गई मेरी॥
इतना उदार होकर भी वैभव खोता जाता है।
दुख अपना है वा पर का नभ तो रोता जाता है॥
मिल गया चित्र है उसका उसको विचित्र पाऊँगा।
बनकर बयार आया था आँधी होकर जाऊँगा॥
क्या सुनकर स्तब्ध हुआ है वह कान नहीं कह सकता।
अभिमान सहन कर लेना अपमान नहीं सह सकता॥
माली पुष्पों की रति का उनमें न प्रेम पाया है।
पर्याप्त काल आया है पर काल नहीं आया है॥
चलकर मेरे उर को तो यह खंड खंड करती है।
है वज्र बयार बसन्ती रोचक बनती फिरती है॥
कर रहा प्रेम जबतक हूँ तबतक सर्वज्ञ रहूँगा।
निष्प्रेम भला एकाकी किससे किस भाँति कहूँगा॥
सुख स्वप्न सूचना देकर दुख तो देती रहती हो।
धिक है अपनी रुचियों को कर्मों का फल कहती हो॥
मानवता के दो सुख हैं मुझसे कहते थे सविता।
है अपर योनि में दुर्लभ सुन्दर मदिरा वा कविता॥
गृहिणी है गृह है धन है जग में सत्कार सदा है।
फिर भी मैं चिन्तित ही हूँ यह दोष भाग्य ही का है॥
वह वर्षा व्यर्थ हुई है उत्सुक न कृषक हों जिसके।
वह रूप निन्द्य ही तो है हों तृप्त न प्रेमिक जिसके॥
कब मैंने दुख पाये थे कब रुष्ट किया बालाने।
हरि भजन लगा यों करने आकृष्ट किया मालाने॥
चेतना नहीं थी मुझमें फिर भी रमणी जब आई।
आश्चर्य स्वयं मैंने ही मुझमें कुछ स्मितता पाई॥
आकाश धन्य है तुझको जब कृष्ण वेश लेता है।
सबको अपने में रखकर देखो पानी देता है॥
शिशुता में भी भावुकता जग मेरे बाद कहेगा।
पुष्कर का यह सुन्दर तट जीवन-भर याद रहेगा॥
रोते लज्जा आती थी पर हँसने भी कब पाया।
स्मृत थी प्रत्येक क्रिया भी पर हाय न कुछ कर पाया॥

बिन वंशी गोपी चित को यदि कहीं रिझाने पाता।
तो वह लीला पुरुषोत्तम आकुल हो नहीं बजाता।।
संवाद-मात्र भी उसका अब दूत नहीं लाता है।
जीवन धन कब आयेगा जीवन धन तो जाता है।।
कुछ ध्यान दिया है तुमने जब उषा काल होता है।
रजनी की स्मृति कर करके रवि किरणों से रोता है।।
परिजन श्मशान लाये हैं इनको अब घर जाना है।
अब भाग्य तथा कर्मों का साथी-सा बन जाना है।।
सन्मान कीर्ति श्री शोभा किस भाँति कहूँ मेरी है।
मैं क्रीत दास हूँ तेरा जो कुछ भी है तेरी है।।
सुन्दरी बनाकर उसको क्यों प्यार किया करता है।
निर्माता होकर प्रेमी क्यों दोष दिया करता है।।
अपनी ही इस छाया को क्यों भिन्न गिना करता है।
इसको पीछा करना था पर तू पीछा करता है।।
सन्तुष्ट प्रेम्य को करके प्रेमी सन्तोषी था।
निर्दोष हो गया मर के जीवित रहकर दोषी था।।
सब आकर्षक कृतियों में उनकी अनित्यता देखो।
सुन्दरियों से भी पहले अपनी सुन्दरता देखो।।
भावुकता उर की ही तो सारे जग से लघुतर है।
जबतक तनमें यौवन है जग में जो है सुन्दर है।।
श्रुति तत्व अध्ययन करके अब प्रेमपाश उलझा हूँ।
वेदों की कुछ सीमा है वेदान्त यहीं समझा हूँ।।
लज्जा कामुकता भय क्या प्रत्येक छटा दिखलाई।
सौभाग्य यही मेरा है अनुभवी प्रेयसी पाई।।
मेरी पवित्रता का वह अभिमान नहीं खो सकती।
भगवती मान रक्खी है भगवान् नहीं हो सकती।।
अन्तिम संवाद यही है क्या कभी नहीं आवोगी।
कल्पना सृष्टिसे मेरी कैसे बचकर जावोगी।।
चलनेका कब उत्सुक हूँ मैं तो स्थितिका इच्छुक हूँ।
पर अब गति, स्थिति दोनोंसे मैं ही कुछ आकर्षक हूँ।।
कुछ थी मुसकान अनोखी खिल गये पुष्प भी सारे।
मदिरा भी घटसे छलके नभमें चमके सब तारे।।

मरकर ही तो बन्दी हैं सर्वदा नहीं मर सकते।
जो कार्यवद्ध करते हैं वह मुक्त नहीं कर सकते॥
मदिरा न चखी है जिसने जीवन सुख क्या पावेगा।
जूँ-सा होकर आया है मच्छर-सा उड़ जावेगा॥
गन्तव्य स्थान पा जाना पशुओं को भी आता है।
तो फिर वह तो पशुतम है जो उसे नहीं पाता है॥
सत्कर्मोंसे ही बस मैं यदि शुभ लोकोंको पाऊँ।
तो ईश्वरकी करुणाका किसको क्या लाभ बताऊँ॥
दर्पण कर में आया तो ईश्वरको कर में देखो।
व्यापकताको विस्मृत कर यों स्वीय वेश में देखो॥
रोगी होकर भी मैं तो उसमें अभेद लखता हूँ।
क्या दोष भला जो यों मैं अपनेको ही हँसता हूँ॥
अपने जीवनमें मैंने हँस-हँसकर सभी किया है।
होली-सा स्वाँग बनाकर फागुन में जन्म लिया है॥
मस्तिष्क हृदय प्राणोंको वह केश शेष डसता था।
यों स्वीय सृष्टि नशती थी पर मैं शिव हो हँसता था॥
सुन्दरियोंमें ईश्वर में केवल विरोध इतना है।
धनवान इन्हें प्यारे हैं निर्धन उसका अपना है॥
है लोभ पुण्यका जबतक तबतक ही पाप लगेगा।
स्वर्गोंको यदि तज दे तो भय पाकर नरक भगेगा॥
अपनेको सीमित करना इच्छा पर ही निर्भर है।
सीमा ही को तज दे तो तू ही निर्गुण ईश्वर है॥
तीनों ही सन्ध्याओंमें हरि भजन तजा करता हूँ।
विश्वास नहीं होवेगा मैं तुझे भजा करता हूँ॥
देखा अनित्य ही तो थी प्रत्येक वस्तु वसुधाकी।
विश्वस्त काल ही तो है बस अद्वितीय एकाकी॥
सौन्दर्य तेजसे मैं भी रह गया स्तब्ध सकुचाया।
पुतली भृकुटीसे भी तो कुछ भाव न कहने पाया॥
मतिसे यदि प्रेम उड़ा है तो सुन लो कोरी-कोरी।
गुड्डी ऊँची जाती लख ढीली कर देना डोरी॥
मृतको फिर मृत्यु कहा है पर मृत भी कोई होवे।
मारे जाने वालोंपर कैसे कोई भी रोवे॥

लखते ही दो आश्वासन प्रेमीको रोते-रोते।
वा स्पष्ट घोषणा कर दो हम नहीं किसीके होते॥
सौन्दर्य हाट भी क्या है सबके मुँह पर ताला है।
सब वस्तु क्रीत है इसकी अब शून्य पण्यशाला है॥
यह हृदय उसे रुचता था लेनेकी थी ठहराई।
जब हृदय न सौंपा मैंने तब आप हृदयमें आई॥
फिर चेत किसे रहता है यह वन है अथवा घर है।
मद पीनेसे पहिले ही मद्यालय सुखमाकर है॥
ऋतुओं से उत्तेजित हो आलिंगन बहुत किये हैं।
फिर भी अब तक इस उरमें तेरा ही प्रेम लिये हैं॥
श्रोत्रिय मख के धूँए से आँसू है व्यर्थ बहाता।
सौन्दर्य हेतु रोता तू तो श्रुति-स्तुत ही बन जाता॥
सुन्दरियों में अनुकम्पा ? तू किस जगमें रहता है।
रमणी की कामुकता को क्या कृपा-कृपा कहता है॥
अद्वैत भाव लख उसमें हम अमृत फल चखते हैं।
आकर्षक है यद्यपि वह पर लोग हमें लखते हैं॥
प्रेयसी तथा प्रेमी में आविष्ट ब्रह्म होता है।
उसमें जाकर हँसता है इसमें आकर रोता है॥
जब विश्व नाट्यशाला का निर्धारण केन्द्र बना था।
मैंने ईश्वर के आगे प्रेमी का पात्र चुना था॥
बस इस तन के तजते ही सबमें मैं ही मैं हूँगा।
यों समष्टित्व लेनेमें व्यष्टित्व हाय खोऊँगा॥
वर पाकर रव करता हूँ दम से मद पा लेता हूँ।
उलटा हूँ नम करने से अपना मन दे देता हूँ॥
वह आज हुआ कल मैं भी कुछ का कुछ हो जाऊँगा।
तू ही बस कुछ समझा दे दुखमें क्यों सुख पाऊँगा॥
निज प्रेम कथा कविता में कबतक लिखती जावैगी।
मसि पात्र पलट जावैगा लेखनी टूट जावैगी॥
रवि के कारण पानी है अन्यथा सिद्ध सिकता है।
पर जगकी मृगतृष्णा का रवि कैसे छिप सकता है॥
सोने को भला सुहागा उजला ही कब करता है।
उजला तो स्वर्ण स्वयं है यह तो मल ही हरता है॥

वृक्षों की शीतल छाया झरनों से प्यास बुझाते।
हा हन्त ! अन्न कारण ही भवमें फँसते अकुलाते॥
उपनिषद् सभी रट डाले सारे पुराण पढ़ पाये।
सौन्दर्य किन्तु बाधक है इससे जगदीश बचाये॥
रति शय्या पर बाला है फिर सुरा पात्र करमें है।
तपका फल अब क्या होगा अब मोक्ष स्वयं घरमें है॥
मैं उसका हूँ वह मेरी सम बाह्य तथा अन्तर है।
तो मिलन वियोग हमारे हम दोनों पर निर्भर है॥
स्वर एक रहा श्रुति उरका श्रुतिका जब तार बजाया।
हो उठा स्पन्द इस उरमें इसने ही प्रेम सिखाया॥
आश्चर्य नहीं कुछ आया पढ़ कादम्बरी कथा को।
वह मृत जी ही जाता है जो तरता प्रेम व्यथा को॥
नयनों में अब वह मेरे सौन्दर्य चित्र आते हैं।
ये अश्रु स्वयं लज्जित हो बाहर निकले जाते हैं॥
सबसे अमनस्क बना हूँ दृग कहीं नहीं डालूंगा।
यदि यही तपस्या स्थिर है तो उसको मैं पा लूंगा॥
मरकर वे ही जीयेंगे जो कुछ भी कर जायेंगे।
अन्यथा जन्म लेकर तो सारे ही मर जायेंगे॥
अप्सरा सुरा देती है प्रति बोध उसे होता है।
अवशिष्ट ज्ञान है किसमें विक्षिप्त कौन होता है॥
सोमपको सोम मुखीने क्या सोम पान करवाया।
आश्चर्य किन्तु होता है वह सौम्य नहीं हो पाया॥
वैदिक मन्त्रोंके द्वारा तेरी उपासना कर लूं।
तू क्षण-भर उरमें बैठे तो मैं तुझको ही वर लूं॥
नयनोंका विष अमृत था फिर भी दोषी है बाला।
इस बाल - ब्रह्मचारीको प्रेमाचारी कर डाला॥
यह प्रेम-सरित जबतक है तबतक ही स्नान बनेगा।
जब मोह - सिन्धुमें लय हो कीचड़में पाँव सनेगा॥
वा दर्शन मिल जायेंगे वा प्राण त्याग देता हूँ।
आया तो जाऊँ ही क्यों मरनेतक प्रण लेता हूँ॥
नचिकेता सम फिर मैं भी आया हूँ यम मत डरना।
हाँ समझाने आया हूँ उपदेश मुझे मत करना॥

मन बुद्धि चित्त जब गत हैं कब शब्द बने आकर्षक।
सुन्दरियोंकी गलियोंमें उपदेश नहीं आवश्यक॥
शय्या - त्यागी सम्भवतः पुष्पोंपर सो सकता है।
पर शय्या - शायी सुखसे करवट न बदल सकता है॥
इस प्रेम रोगसे डरकर हैं मूर्ख चिकित्सा करते।
ज्ञानी तो स्वत्व समझकर हो क्लान्त इसीसे मरते॥
संहिता उपनिषद्वत् होकर हा हन्त ! हुई आरण्यक।
श्रुति तुल्य मिली नियराई वन भेजा विरही पण्यक॥
जिह्वापर राम रहेगा सुनते हो तो कह डालूँ।
उस वृन्दावन वालेको उरसे किस भाँति निकालूँ॥
जिसको पातंजलिने था षट्चक्र भेदकर पाया।
उस शुभ समाधिका अनुभव दो सुरा घूंटमें आया॥
हो मत्त प्रेम-मदिरासे सुलझन भी उलझा दी हैं।
गुह्यातिगुह्य गाथाएँ गा-गाकर समझा दी हैं॥
उपहास प्रेमके जगमें किस भाँति भला होवेगा।
बस प्रथम शब्द ही सुनकर श्रोता सिर धुन रोवेगा॥
बलिदान प्रेमका लखकर गर्वी नयनों में जल है।
सौंदर्य-प्रेमका रणका कैसा उर द्रावक फल है॥
मनकी चिन्ताका अद्भुत विवरण उरपर चित्रित है।
इस एक अश्वके कारण आरोही तो विस्मृत है॥
सौन्दर्य विनिंदक चल दे कुछ तुझे आज ही जाना।
यह अलख तुझे दिखलाया लखकर भी क्या पहचाना॥
प्रेमी जानेको तेरे ये प्राण चले जायेंगे।
पर यह आये कैसे थे हम ही समझायेंगे॥
प्रेयसी भवन तज करके मंदिर में क्यों कर जोड़ूँ।
उस चरणामृतके कारण यह अधरामृत क्यों छोड़ूँ॥
मत पूछो देखा भी है वा केवल कहीं सुना है।
ऐसे प्रश्नोंपर बहुधा प्रेमी ने शीश धुना है॥
कुछ चकित हुआ था लखकर जगकी शोभाको, जगको।
निज नेत्र बाणसे उसने, कर विद्ध सुझाया मगको॥
सेवा कर-करके उसने फाँसा इन जंजालों में।
इतना ज्ञानी होकर भी आ गया हाय चालोंमें॥

यह तो किस भाँति कहूँ मैं तेरा हूँ वा तेरे हैं।
अपना घर ही तजनेसे जग-भरके घर मेरे हैं॥
काशीमें जाकर कैसे कर विश्वनाथको जोड़ूँ।
इच्छा उत्सुक करती है क्या पत्थरसे सिर फोड़ूँ॥
आनंद अधिक पाया था जब मनमें नहीं समाया।
तब उसे बाँटने वनसे मैं इन नगरोंमें आया॥
रमणी की एक कृपासे मैं प्रमुदित हो मरता था।
वरवश क्यों हृदय चुराया क्या मैं निषेध करता था॥
आनंदित हो क्या रोना प्रेमी बनकर क्या सोना।
एकाकीको क्या खोना इन तीनोंपर क्या होना॥
उस दृष्टिपातकी महिमा किस भाँति करूँ वर्णन मैं।
भूला न कभी भूलूँगा उस सुखको आजीवन मैं॥
प्रेयसी माँगता था मैं, प्रभुसे धन वैभव पाया।
प्रेमीको क्या इनसे है, कुछ भेद नहीं लख पाया॥
प्रस्थान लक्ष्य जब पूछा, तब यों बोली मुसकाती।
जिससे तुम जलते हो नित उसके ही घर हूँ जाती॥
चुम्बनका दान इसे दो जो है शतांश यौवनका।
अभ्यागत है यह स्वामी यद्यपि न तुम्हारे मनका॥
मैं सावधान हूँ भगवन कुछ मादक सुरा पिला दो।
नारदवत् कुछ मुझसे भी मायाका खेल खिला दो॥
मैं कितना आकर्षक था आकृष्ट कर गई कृष्णा।
बन गई हाय देखो तो मेरी इच्छा ही तृष्णा॥
मुसकाकर मिलन प्रतिज्ञा सह-शयन समय कर प्रस्तुत।
देखो विस्मृत करती है होती वचनों से क्यों च्युत॥
कर दिया सुराने आधा आधा अब भ्रष्ट करैगी।
त्यों शनैः शनैः बाला भी उनको आकृष्ट करैगी॥
सुनकर कठोर शब्दों को यह हृदय टूट जाता है।
जब वज्र इसे सुनता हूँ यह कोमल मुसकाता है॥
जगके आश्वासन हित तो यद्यपि कुछ कह सकती है।
विवरण मेरा, मति विद्या किस भाँति जान सकती है॥
सुन्दर बाला की रतिसे तपका विनाश न खला है।
मैं तो निश्चय कहता हूँ तपका द्विगुणार्ध मिला है॥

अब तक भी हिम श्रृंगों से कामुक बयार आती है।
शिव शत्रु अनंग भले हो सत्ता रह ही जाती है॥
सारिका कूकती मैना शुक समझाता तू-तू है।
भ्रम तुल्य द्वैत माया है 'मैं' के अभाव में तू है॥
आवरण स्वीय मति में है मतिसे तू स्वत्व बचा ले।
उस पर आवरण कहाँ है अपना आवरण हटा ले॥
भगवद्भक्तोंसे निश्चय रमणी प्रेमी वरतर हैं।
वे स्तोता अनुगामी हैं ये वक्ता हो अनुचर हैं॥
जिसका ग्राहक बनता था उसने ही क्रीत किया है।
अब वीतराग होनेको मैंने उपवीत लिया है॥
पांचाल सिंधुकी कन्या क्या बार-बार आयेगी।
पुष्करवत् क्या जीवनमें आनंदित कर पायेगी॥
धन-धाम धर्म खोकरके मैंने पाई यह बाला।
हो अन्धकार जग-भरमें घरमें तो हुवा उजाला॥
यदि बिन्दु सिन्धु बनता है क्या जीव न ईश्वर होगा।
जब ज्ञान न मिला वनोंमें तो क्या स्त्री के घर होगा॥
जीवित रहनेकी इच्छा सारे दुखका कारण है।
अतएव तथ्य यह निकला जीवन तो महा मरण है॥
सुन्दरियों की न कथा सुन सुन भी ले तो मत लखना।
लख भी लेवै विधि वश तो मन सावधान ही रखना॥
दीपकपर कितने ही हो आसक्त पतंग लुभाये।
पर ब्रह्म-ज्योतिसे बोलो किसने हैं पंख जलाये॥
छत और झरोखोंपर भी अब प्रिये नहीं दिखती हो।
क्या प्रतिद्वन्द्वीसे डर है जो पत्र नहीं लिखती हो॥
नक्षत्र, वार, तिथि शुभ थे जब चित्त लगा बाला में।
पठितव्य पठित सब पुस्तक रह गयी पाठशाला में॥
मुझको प्रतीत होता था विश्वास-घातिनी होगी।
पर हृदय यही कहता था क्यों क्रूर कामिनी होगी॥
छवि शासित प्रेमी मंडल आज्ञाकारी होता है।
आज्ञा लेकर हँसता है आज्ञा पाकर रोता है॥
देखो तो व्यर्थ उसे जग कहता है पूर्ण लजीली।
पर इस लज्जा में भी है निश्चय कुछ चाल कटीली॥

अपने स्वभाव वश हो वह धृष्टता अधिक करती है।
आवरण लक्ष पाकर भी उन्माद नहीं तजती है।।
वर्षों विस्मृत रखता हूँ जब विस्मृतिसुख चखता हूँ।
पर जब स्मृति आती है कल्पों तक स्मृत रखता हूँ।।
इन अश्रु प्रवाहोंसे ही मैं सबको तृप्त करूँगा।
पितरों हित गंगा लाकर भागीरथ नहीं बनूँगा।।
योगी भी हूँ ज्ञानी भी पर इतना कर देता हूँ।
व्रत भिक्षुक सुन्दरियोंकी झोली तो भर देता हूँ।।
प्रियतमे क्षमा तो कर दे सब तुझपर दोष लगाया।
आवरण स्वयं मैं ही था है आज जान यह पाया।।
रुक-रुककर कुछ कहता हूँ डर-डरके जैसे तैसे।
अन्यथा ज्ञात है जगको किस भाँति हुआ क्या कैसे।।
ऐसा आदर्श पुरुष तो जग में न दिखाई देता।
पर क्या कारण है फिर जो अपख्यात सुनाई देता।।
उसका स्वभाव स्मृत करके हो मुग्ध हृदय खिलता है।
कहता है वहाँ मिलूँगा पर और कहीं मिलता है।।
करुणासे आभारी हूँ वरका फिर भार भला क्यों।
संस्कृति छोड़े बैठा हूँ फलमें संसार भला क्यों।।
प्रत्यक्ष हुआ कहता है प्रच्छन्न सदा रहता हूँ।
उसकी इस शिशु क्रीड़ाको हँसते-हँसते कहता हूँ।।
मखशाला रतिशालाका पंडित अभेद खोते हैं।
स्तुति, आहुति, नमन, विसर्जन बहुधा विचित्र होते हैं।।
कोई उससे वर तर हो तो अपना हृदय हटा लूँ।
पर हृदय चक्षु दोनोंमें पहले किसको मैं टालूँ।।
नयनोंमें कभी बसी है हो अश्रु कभी बहती है।
फिर भी यह तो क्रीड़ा है निश्चय उरमें रहती है।।
वेदान्त श्रवण कर देखो मैं काम शास्त्र पढ़ता हूँ।
मानों समुद्रको तरकर अब पर्वतपर चढ़ता हूँ।।
इसकी चिन्ता मत करना वाणी सकुचा जायेगी।
तेरी हृद्गत अभिलाषा श्रोताको ले आयेगी।।
श्रुत है सन्तोष सुखद है अतएव भाव आता है।
अनुभव इसका भी कर लें दो दिन में क्या जाता है।।

केवल इतना ही श्रुत है केवल इतना ही स्मृत है।
हम समिधाओंकी गतिको यह प्रेम तत्व ही घृत है।।
भीष्मसे बाण-शय्यापर जब प्रेम तत्व पुछवाया।
बोले मेरी गति लख लो है यही प्रेम की छाया।।
प्रहरी सौन्दर्य हुआ है यौवन अब तक सोता है।
कर ले प्रबन्ध कुछ प्रेमी क्यों समय यहाँ खोता है।।
जगकी सब कुछ सुनती है कैसी तेरी छाती है।
तुझको निर्मोही सुनकर मुझको लज्जा आती है।।
जिसपर भी दृष्टि उठा दी वह द्रष्टा नहीं रहता है।
यदि कोई दर्शक भी हो तो कभी नहीं कहता है।।
योगी सच्चा वह है जो सौन्दर्य-बाण सहता है।
भोगसे योगका घर भी दो ही डग तो रहता है।।
मृत्यु ही जानकर उसका आलिंगन स्वयं किया था।
हा हन्त अमर हो बैठा अमृत विष हेतु लिया था।।
जाने कितने सुखमाकर दोनोंसे स्रोत बहेंगे।
कैलास तथा मेरा घर शीतल ही नित्य रहेंगे।।
इस प्रेम सिन्धुके ऊपर यह स्नेह सुरा ढुलका दी।
वस्तुतः मूर्ख तैंने तो पानीमें आग लगा दी।।
आतिथ्य भावसे हमने तन मन धन दे डाला है।
गृहिणी बन उरकी याचक फिर भी होती बाला है।।
अनुमान प्रेमका पलमें सुन्दरता कर ही लेगी।
यदि स्वीय हृदय दर्पणमें प्रेयसी मुझे देखेगी।।
पुष्पोंके वर्णादिकके कब भेद विश्व में निकले।
हम लख आकृष्ट हुए थे हो तुष्ट कुंजसे निकले।।
प्रत्येक भावपर तेरे ललचाता है मन मेरा।
कुछ और निकट आ जा तो चुम्बन कर डालूँ तेरा।।
भय मुक्ति तत्वका कुछ है अतएव पाप करता हूँ।
हैं पुण्य नहीं हो सकते पर मैं कुछ हो रहता हूँ।।
इस प्रेम प्रीतमें देखो मेरे स्वकीय भी पर हैं।
अक्षर द्वितीय उत्तर हैं प्रथमाक्षर मेरा घर है।।
कब नेत्र ज्योति दुर्बल है जनता झूठी कहती है।
मेरे दोनों नयनोंमें वह शक्ति सदा रहती है।।

रमणीने आज कहा है सब इच्छा पूर्ण करूँगी।
तुम कल दिनमें मर जाना निशिमें जीवित कर दूँगी॥
मेरे तेरे दोनोंके मैं पाप सभी धो लूँगा।
मरने से पहले तेरे यौवनको तो रो लूँगा॥
हम सत्य कहे देते हैं दर्पण वह नचिकेता है।
यम मार-मारकर सबको कुछ शिक्षा ही देता है॥
इस हेतु प्रेम्यका मैंने वह चित्र नष्ट कर डाला।
इसने वियोग सुख पथसे कुछ मुझे भ्रष्ट कर डाला॥
अपने कृत्योंपर उसको लज्जा न कभी आती है।
मेरी सारी कृतियोंपर रह रहकर मुसकाती है॥
ऐसे ही गुरु यदि जगमें ऐसी ही शिक्षा देंगे।
तो सुन्दर गुरु पूजाको यौवन हम भी ला देंगे॥
शिरपर पृथ्वी जिसके थी उसने क्यों प्रलय दिखाया।
देखो देखो रमणीके शिरपर वह क्यों चढ़ आया॥
लिपि प्रेम्य पत्रकी क्या थी विधि-लिखित भाग्य-लिपि जानी।
उत्सुकता फिर भी भयसे पढ़नेकी कभी न ठानी॥
मत पूछ कुशल मंगल तू सब तव दर्शनका फल है।
सकुशल हूँ तभी खड़ा हूँ तू मिली यही मंगल है॥
अट्ठाइस कल्पोंका तो मम निशिका प्रथम प्रहर है।
यह विरह काल मत पूछो सुखकर है वा दुखकर है॥
पीड़ित होकर आई थी पीड़ित करके जाती है।
कैसा आना जाना है कुछ बात नहीं पाती है॥
रमणीसे रमण न पाया सन्तोष किन्तु आया है।
जो उसके घरके पथका वर्णन तो सुन पाया है॥
था कर्म मात्र ही मेरा मत धन्यवाद दे मुझको।
तेरा ही धन व्यय करके मैंने खोजा था तुझको॥
दारिद्र्य वसनका है ही जगको न दृष्टिमें लाऊँ।
रमणी न पास आती है उन्माद किसे दिखलाऊँ॥
मैं मेय उसे समझा था पर अब उलटा नाता है।
जब मेरा मान किया है तब तो निश्चय माता है॥
आधार शिला इस जगके वैभवकी अब हिलती है।
आनंद प्राप्त है सारा पर शान्ति नहीं मिलती है॥

मुझपर करुणा करते हैं वा कुछ मुझसे पाते हैं।
मैं जहाँ वास करता हूँ सब तीर्थ चले आते हैं।।
संगीत सुना करता हूँ साहित्य पढ़ा करता हूँ।
पंडित हूँ सकल कलाका जिसको देखूँ वरता हूँ।।
जिसके समान कितने हों उसको कह दूँ अनुपम क्या ?
धन यौवन हरनेवाले प्रियतमा तथा प्रियतम क्या ?
देखी, चाही, वा पाई छोड़ी फिर गले लगाई।
सौन्दर्य हेतु प्रतिकृति ही मेरी सुन्दर लख पाई।।
मेरी दुर्बलता ही का वह अनुचित लाभ उठाती।
सौन्दर्य कहाँ हो उसमें अन्योंको क्यों न रिझाती।।
माधुरी विश्व पुस्तककी मैंने जिस भाँति चखी है।
लेखकने भी सम्भवतः लिखकर भी नहीं लखी है।।
चरणामृत वा भोगादिक अब तक यद्यपि न चखे हैं।
उन्माद ग्रहण कर हमने क्षणमें सब तीर्थ लखे हैं।।
तेरा ही मूल्य बढ़ाने चुम्बनकी इच्छा आती।
ग्राहक न कहीं जिसका हो वह तो अनर्घ कहलाती।।
निज प्रेम विश्वकी महिमा किसको कितनी बतलावें।
अब तक जो कुछ समझे हैं जगको कैसे समझावें।।
विज्ञान ज्ञान भी मेरा दिन प्रति दिन नित्य बढ़ा है।
शुकवत मैंने न रटा है शुक तुल्य सदैव पढ़ा है।।
संन्यास ग्रहण करके भी इतनी इच्छा है मुझको।
शपथें दे-देकर गृहिणी फिर गृही बना ले मुझको।।
गुण नष्ट हुए सब मेरे जबसे न सगुण टाला है।
निर्गुणके तो चिन्तनने निर्गुण ही कर डाला है।।
इस विश्व-हाटमें अपना मैं तो मन बहलाऊँगा।
सौन्दर्य सभी क्रय करके जाऊँगा तो जाऊँगा।।
वह रूप प्राप्त करनेको सब कुछ ही कर जावेगा।
मैं वा मेरा प्रतिद्वन्द्वी कोई तो मर जावेगा।।
सुन्दरका दास सदा था सुन्दरियों से थी जोड़ी।
श्रुतिमें भी रुद्र सुना तो उसमें भी श्रद्धा छोड़ी।।
कर नष्ट मुझे भी वाले इच्छाकी हत्या करके।
वा पूरा मुझे बना दे इच्छाको पूरा करके।।

है पूर्ण कृपा द्विगुणित फल देती प्रमुदित रहती है।
उत्तर में प्रति प्रश्नोंके वह नहीं-नहीं कहती है।।
कविताका यह अन्तिम पद प्रलयान्त पढ़ा जावेगा।
यह काव्य अमर होवेगा कवि भले चला जावेगा।।
तमसे मिलने आया था हा हंत मर गया वह तो।
हो शोक मग्न जलता है दीपक फिर भी तू रह तो।।
मसजिद को मंदिर समझा शांभवी ज्ञानवापीकी।
तब कहीं सुफल स्तुति बैठी उस नवमुस्लिम पापीकी।।
पीकर पुराणका प्याला यदि नहीं तुझे मद छाया।
तो उपनिषदोंका घट पी मर डूब वहीं बौराया।।
तुझको ही सार समझकर तव वास्य चित्त धरता हूँ।
यद्यपि असार है फिर भी संसार कहा करता हूँ।।
छवि केश त्वचा स्तन विकृत दाँतोंको मुखसे तोड़ा।
यौवनका हाय जराने कोई भी चिह्न न छोड़ा।।
भगवद्‌भक्तोंने हमको स्मृत प्रभुकी कृपा कराके।
पापी ही कर डाला है हैं पाप प्रताप कृपाके।।
माया है वा छाया है पर मैं नाता क्यों तोड़ूं।
आँखें तो देख रही हैं क्या इनको पहले फोड़ूं।।
हेमन्त कालमें भी तो मैंने यह की चतुराई।
अंततः तोड़ बैठा ही दो चार कली मुरझाई।।
ऋषियोंकी एवं मेरी बस एक प्रकृति न्यारी है।
सौन्दर्य उन्हें प्यारा था सुन्दरी मुझे प्यारी है।।
लावण्य क्षारसे उसके अपना हृत्पट धो डाला।
यौवन उसका क्या लूटा अपना ही बस खो डाला।।
प्रेमीकी एक दशा पर दृगवाले मुसकाते हैं।
जिह्वा यद्यपि मुख में है पर बैन नहीं आते हैं।।
बस प्राण प्रतिष्ठा दो ही हैं विघ्न प्रेम-प्रतिमाके।
इनमें आसक्त रहे जो सो बने भार वसुधाके।।
जीवनकी एक तरणि पर शतशः केवट बैठाये।
शतकी सहस्र मतियें हैं किस भाँति पारको पाये।।
मैं जग-भरका प्रेमी था जिसको जब चाहा पाया।
अपना प्रेमी कर तैंने सबको मुझसे भुलवाया।।

सौन्दर्य विद्ध हूँ मैं तो कब अन्य गुणोंको देखा।
भावोंके बिन्दु स्वयं ही मिलकर रचते हैं रेखा॥
श्रुति यद्यपि यह कहती है ईश्वर ही बस सुन्दर है।
पर मेरी स्मृति कहती है जो सुन्दर है ईश्वर है॥
नम-नम कर रमणीको ही करके प्रणाम तकता था।
उस निराकार ईश्वरके आगे कब झुक सकता था ?
उन्मत्त हुआ भी इतना चातुर्य किया करता हूँ।
है पात्र भाग्यका जितना उतनी मदिरा भरता हूँ॥
गीता पढ़कर भी तुझको यदि कृष्ण भक्ति ही भाई।
तो जा फिर पढ़ उसको तू अब तक न समझमें आई॥
प्रेमी हो यद्यपि तनमें कोमलता भर लाया हूँ।
तेरा पाषाण हृदय लख वृश्चिक बनकर आया हूँ॥
सौन्दर्य सलिलमें यों ही तू स्नेह तत्व कहता है।
जितना चाहे तू मथ ले घृत यहाँ नहीं रहता है॥
ईश्वर एवं सुन्दरियाँ स्तुति नित्य श्रवण करते हैं।
हाँ किन्तु सदा देखा है अपनी रुचि ही करते हैं॥
संकीर्ण लक्ष्य हो तव तो कण-कणमें भासित मग है।
मेरा उद्देश्य महत् लख वैरी सारा ही जग है॥
माधुर्य प्राप्त था इतना उसके शब्दोंको सुनकर।
लावण्य माँग वैठा ही छकते-छकते सिर धुनकर॥
जीवन सुखसे शंसित है हा प्रेम मृत्यु इस जगमें।
दोनोंको ही पा बैठा उन्मादी दो ही डगमें॥
रवि चन्द्र अस्त हो जायें क्या तमसे भी ढक देंगे ?
हम आत्म ज्योतिसे अपनी रुचिकी रमणी लख लेंगे॥
यह चन्द्र ज्योत्स्ना, रमणी मदिरा शीतल झरना है।
पर कैसे भोग सकूँगा हा हन्त मुझे मरना है॥
इतना कोई समझा दे इतना ही प्रश्न रहा है।
क्यों प्रेम पुजारी जग है क्या उत्तर कहीं कहा है॥
दीपक पतंग दोनोंका मिटना कुछ कह जाता है।
वह जलकर रह जाता है वह बुझकर रह जाता है॥
हा कामदेवने भी तो नूतन वसन्त ऋतु ला दी।
हेमन्त विटप मेरे मन तीनोंमें आग लगा दी॥

सौन्दर्य स्वप्न आया है अपनी तो अब इच्छा है।
तेरी यह यौवन रजनी शीतल हो तो अच्छा है॥
जब प्रेमदेवने मुझको उन्मत्ताचार्य बनाया।
तब देवि बुद्धि तुमपर तो हँसना ही मुझको भाया॥
दीपककी यही कथा है ले मैं तुझको समझाता।
बुझ-बुझकर जलना ही तो है जीवन तत्व कहाता॥
यह कैसी सुन्दरता है सत्वर मन खो जाता है।
सौन्दर्य परीक्षकको भी विभ्रम-सा हो जाता है॥
थोड़ा-सा भी वश चलता तो मैं गुरुदेव बताता।
कोई सुन्दर रमणी ला उससे रत तुम्हें कराता॥
यह प्रेम पुराण हमारा किसने सम्पूर्ण सुना है।
ब्रह्माके सौ कल्पोंमें पहला अध्याय हुवा है॥
स्वामी यह वार वधू है इसके घर इसको वर ले।
जब चातुर्मास किया है तब प्रथम रात्रि भी कर ले॥
प्रेमी प्रमाण आदिक की आवश्यकता लायेगा।
कोकिलको वाद्य प्रथा पर गाना कैसे आयेगा?
निर्विषय जानकर तजती तब तो हो जाता समुचित।
ऐसे विषयीसे यदि वह हो गई रुष्ट क्या अनुचित॥
क्यों प्रेम कर लिया तैंने कुछ और काम करना था।
गिरि शृङ्गोंपर चढ़ स्वामी इसको प्रणाम करना था॥
पुष्कर कब तीर्थ हुआ है गाथा न कभी सुन पाई।
प्रेयसी प्रेय-सी होगी दूती भी दृष्टि न आई॥
हा प्रेम तत्व तजकर भी स्वामी क्या हार रहा है।
क्यों ललचाई आँखों से सब ओर निहार रहा है॥
पंडित मंडल है तेरा वा दुर्जन कुमति अखाड़ा।
पर लोक वादने तेरे मेरा यह लोक बिगाड़ा॥
यह बालहृदय है मेरा चंचलता सदा करेगा।
रमणीके घर भी तो यह कुछ अधिक नहीं ठहरेगा॥
पंचाग्नि तापने वाला विद्वान् ब्रह्म पदगामी।
तेरे सौन्दर्य सलिलसे ठंडा हो जाता स्वामी॥
इच्छा है यह शिक्षक भी शिक्षित कहने में आवे।
सुन्दरी शिक्षिका का यह सच्छिष्य कहीं बन जावे॥

अवसर पाकर भी हमने उनका कब हृदय दुखाया।
सुन्दरियोंका चुम्बन भी अनुमति बिन कब है पाया॥
स्वामीसे वह कहती है कुछ मुसकाती-मुसकाती।
प्रेमी न आप होते तो मैं भी शिष्या हो जाती॥
यौवन कब कब आता है किसने यह बोध लिया है।
जिसपर करना था उसपर न्यौछावर हृदय किया है॥
तुमपर ही यह आता है औरोंपर कब जाता है।
यह बालहृदय है मेरा गोदीमें सो जाता है॥
ले लिया हृदयको बरबस यद्यपि था टूटा फूटा।
हा अतिथि बनाकर मुझको अपने घरपर ही लूटा॥
कल्पना कभी होती है मुझको विचारती होगी।
फिर यह विचार होता हो कल्पना न करती होगी॥
मित्रोंसे क्या गुरुसे भी मेरी सब कथा सुना दी।
मेरी लघु प्रेम पहेली उसने भागवत बना दी॥
हैं खंड-खंड कर डाले फिर लेनेको गिरती है।
मेरे इस एक हृदयको सुन्दरी लिये फिरती है॥
नयनोंके पथसे ही तो उरमें प्रियतमा गई है।
निज कमल चरणकी मानों प्रति छवि दो छोड़ गई है॥
वह कष्ट सहिष्णु हृदय जब मेरे ढिग नहीं रहा है।
फिर व्यर्थ कष्ट यों देना किस खलने तुम्हें कहा है?
रावणको कंसादिकको शौर्यने नहीं मारा था।
हन्ताकी सुन्दरतामें कुछ विस्फोटक पारा था॥
मुखको वेणी ढकती है रमणी कब घबराती है।
जितनी जितनी छाती है उतनी ही छबि पाती है॥
तज पथ्य तथा लंघनको ज्योति-ज्वर तुझे चढ़ा है।
जब जब उपचार किया है तब तब ही रोग बढ़ा है॥
देखो तो कैसा करतब मेरे उस दाताका है।
कार्पण्य दुराकर कहता यह लेख विधाताका है॥
देवार्चन शिक्षा मत दे क्यों तैंने कष्ट किया है।
मेरा मन सुन्दरियों के घरपर ही बहल गया है॥
निज योग डाल चूल्हेमें गोरखको मैं समझाता।
रमणीसे जब मिलता हूँ मन है निरुद्ध हो जाता॥

उरमें होता रख लेता अब तुम्हें न बिठलानेका।
वस्तुतः तुम्हारा आना ही है प्रमाण जानेका॥
निष्प्राण बना प्रेमीको जलती जलती खिलती है।
प्रियतमा चिता ये दोनों क्या प्राण रहे मिलती हैं ?
पर्याप्त कथा सुनकर भी विश्वास नहीं करती हो।
फिर भी है शेष परीक्षा कहनेमें क्यों डरती हो ?
अज्ञात गम्य है मेरा गन्तव्य ज्ञेय हो तो हो।
दो पग चलकर बौराया पथ जैसा जो हो सो हो॥
दुख सह सह भी जीवित हूँ कर्तव्य किये जाता हूँ।
निस्सार जानकर भी मैं उपदेश दिये जाता हूँ॥
स्वर्गसे नरकसे भूसे इस ब्रह्म-ज्ञानने तारा।
हाँ किन्तु सुरा रमणीपर कर कुछ न सका यह हारा॥
अद्भुत विचार है तेरा आनन्द हेतु फिरता है।
जगके भोगोंके इच्छुक जगकी निन्दा करता है॥
उनको हठ है प्रेमीका उन्माद देख मुख मोड़ें।
यह है विचार प्रेमीका कर चकित इन्हें सब छोड़ें॥
व्याकुल होकर उर खोजा जब मैं न दृष्टिमें आया।
मुसका मुसका कहती थी इसमें न कहीं घुस आया॥
यदि कृपा प्रेम सुन्दरियो तुममें थोड़े भी होते।
तो फिर इतने संसारी योगी, विरक्त क्यों होते॥
वेणीका ध्यान तजूं क्यों शरणागतको खोऊँगा।
तक्षक समेत ही अब तो मैं इन्द्र भस्म होऊँगा॥
हो साभिमान वह बाला कहती कुछ कुछ मुसकाके।
स्वामी, वेदज्ञ, तपस्वी मुझपर बलिहारी जाते॥
हे ज्वाला मयी तुम्हारे संकल्प तथा चिन्तनसे।
हृदयादि भस्म हो बैठे पर तुम न गई हो मनसे॥
मदिरा पीकरके मद्यप सुख दुखकी क्या कहता है।
फिर स्वर्ग स्वर्ग ही कब है कब नरक नरक रहता है॥
व्रत भंग सुना स्वामीका तब तो दोनों मुसकाये।
हा अग्नि वरुण भी मिलकर मदिरा बनकर के आये॥
सौन्दर्यवती तो थी ही अब ज्ञानवती भी वह है।
हो सत्यवती कहती है मेरा स्वामी तो यह है॥

स्वामी है प्रेम हमारा गुरु, पिता तथा अनुचर है।
भ्राता, शिक्षक, पथ-दर्शक है पुत्र तथा सहचर है ।।
हे अमर भारती सुन ले नभवाणी कर कुछ कह ले।
इस बलिको दो देवीमें बस यह ले चाहे वह ले ।।
सौन्दर्य सत्य आभा हो हो ज्ञान प्रेम शुचिता हो।
शोभा हैं सब रमणीकी प्रेमीमें दुर्बलता हो ।।
क्या कृपा, शान्ति, उत्सुकता सम्मिलन प्रेमको लखकर।
ईश्वर न स्वयं आता है प्रेमिका वेशमें सुखकर ।।
रमणी परिणयमें मेरा जब रमण काल आया है।
तब ब्रह्म ज्योतिका देखो अनुचित प्रकाश छाया है ।।
क्या व्यर्थ हिमालयको ही शिवका आसन लख रोऊँ।
अब तो मेरी इच्छा है कण-कणका प्रेमी होऊँ ।।
दैनिक आवश्यकताओं पर कर कृतज्ञता घोषित।
क्या धन्यवाद देती है धनवाद नहीं सम्बोधित ।।
भागीरथ यत्न किया था टेढ़ा मेढ़ा समझाया।
तब कहीं प्रेम गंगासे पितरोंको मुक्त कराया ।।
आनंद तथा सुन्दरता यदि शक्ति सहित मिल जाते।
तो प्रेम तत्वसे देखो सब कर्म-काण्ड खिल जाते ।।
उस अंधकारमें मैं हूँ जिसको न कल्पना पाती।
छाया-जैसी सजनी भी घुसते ही है छुट जाती ।।
हे चन्द्र दूर मत जा तू अन्यथा तेज खोवैगा।
नयनोंके तारे तू भी तारा प्रतीत होवैगा ।।
अपने शरीरमें मैं हूँ मानों मद है मदिरामें।
उच्छिङ्खलता पर मुझ-सी किसको कब मिली सुरामें ?
कर रंगनाथका दर्शन मति भी हो गई रंगीली।
मैं राग रंगकर बैठा प्रभु भक्ति रही अलबेली ।।
यह कुटी तुझे अर्पित है मैं रखकर पछताता हूँ।
अब तो सुन्दरियोंको ही घूरने कहीं जाता हूँ ।।
सर्वगत रहे वह फिर भी उसका कुछ स्थान नहीं है।
हमने बहुधा देखा है फिर भी कुछ ध्यान नहीं है ।।
जो शक्तिहीन है शिव है वह शव कैसे कहलाता।
देखो गिरिजाके सन्मुख शिवका है शव हो जाता ।।

बस अतिथि स्मरण करके ही सब कुछ संग्रह कर लूंगा।
उन्माद कभी आये तो प्रति वस्तु भस्म कर दूंगा॥
वह करे परीक्षा मेरी तो कुछ कौतुक दिखलाऊँ।
कौतुकी प्रकृतिको भी मैं बस कौतुक-मात्र बनाऊँ॥
प्रेमी ठोकर खाता है मेरा वह वचन न माना।
जीकर मरना तो आया मरकर जीना भी जाना॥
प्रेयसी प्राणप्रिय है पर तेरे घर आऊँ कैसे ?
मतिज्ञान नष्ट करके तो मनको समझाऊँ कैसे ?
पर गृहमें तो परदेसी आवास नहीं पाते हैं।
हम स्वामी हैं जगतीके अपनीमें यों आते हैं॥
अद्वैत बोधमें भाई तू लाभ नहीं पा सकता।
जब द्वैत नष्ट कर डाला फिर ज्ञान नहीं आ सकता॥
चुम्बनको उत्सुक था पर हो बुद्ध यही जाना था।
तुझ पूजनीय देवीको उरमें ही बैठाना था॥
निर्भीक हुई भयभीता यह विज्ञ अज्ञ-सा ही था।
हाँ किन्तु विपर्ययकारी सब तेज प्रेमका ही था॥
मनकी मनमें ही रख ले बस यह व्यवहार्य नहीं है।
यह अश्रुपात उच्छ्वासें प्रेमीका कार्य नहीं है॥
इस प्रेम मंचशाला की स्तुत नटी दर्शिका भी हो।
वह हृदय-हारिणी तो है पर हृदय-रक्षिका भी हो॥
हृत्पुष्प संग अभिलाषा कलिका-सी मली गई यह।
बलिदान हुवा वह तो लो बलिहारी चली गई यह॥
दुर्भागी तो रमणीसे मिलकर भी फिर जाता है।
नयनों तक चढ़ जाता है पर मनसे गिर जाता है॥
अभिलाषाएँ सखियाँ हैं हटने में मन शंकित है।
एकान्त इसे क्यों कह दूँ तव चित्र हृदय अंकित है॥
रमणीने अनुकम्पा कर जब दृष्टि वहाँ न मिलाई।
हा ! हा ! न कर सका हाहा हो मौन शान्ति क्यों पाई॥
सन्ध्या होते ही देखो रमणीका पद-वन्दन है।
गुरुदेव हँसोगे लखकर मेरा सन्ध्या-वन्दन है॥
बरबस रत रहे किसीसे बरबस ही अब टाला है।
वसुधाके हर जीवोंको हमने देखा भाला है॥

द्रष्टामें ज्ञान नहीं है ज्ञाताके दृष्टि नहीं है।
हाँ ज्ञान-दृष्टिकी संख्या तुमने भी गिनी कहीं है ?
वह प्रेमरागिनी गाए तो मैं भी ताल लगाऊँ।
गत यौवनको सुननेको मति दूतीसे बुलवाऊँ॥
सौन्दर्य सलिलमें अपने मनको भीगा पाता हूँ।
यों पुरोडाश[1] मदिरामें मैं डुबा डुबा खाता हूँ॥
आशय मेरा तो यह है 'आ शयन करो' यह कह दो।
अतिशय इच्छा यह ही थी अति की अति करके वह दो॥
यदि अपने मन मंदिरको हा ! प्रेम विभूति[2] करेंगे।
तो इस प्रभावको लखकर वस्तुतः प्रणाम करेंगे॥
प्रेयसी हृदय दर्पणमें तू किस-किसको तकता है।
जो इसमें आ बसता है वह निकल नहीं सकता है॥
बाले देवोंने भेजा क्या स्वयं भला तू आई।
यदि मैं पवित्र रह जाऊँ तुझको है राम दुहाई॥
या मन में पीर बढ़ा दे या पीड़ा मन में ला दे।
सुखसे उकताए मुझको जैसे तैसे बहला दे॥
लक्ष्मी जबसे हो बैठी अभिनवी क्षीरसागर है।
जो असली नारायण है उसके उरमें ही घर है॥
सुन्दरी प्रेयसीकी स्मृति मन में लेकर फिरता हूँ।
दुर्घटना कारिणिको भी गोदीमें ले फिरता हूँ॥

---

१. जौ, चावल आदि के आटेकी टिकिया जिसे कपाल में रखकर अग्नि में हवन करते हैं; हवि।

२. राख।

दानव या देव बहुत हैं मानव विरले मिलते हैं।
दानव देवोंके मानव होनेमें उर छिलते हैं।।
निष्प्राण आँखको खोले प्रेमी किसको तकता था।
प्रिय प्राण प्राणप्रियका था यह किसका हो सकता था ।।
भ्रूभंगीकी श्रमिकाने की भंग सभी सज्जनता।
यदि भंग प्रतिज्ञा कर दी तो क्या इसमें नूतनता ।।
नयनोंकी ही रचना है यह मेरा यह इसका है।
जब पलक मूँद लेता हूँ तब कौन कहाँ किसका है।।
सुर मुझको मत कर देना मुझको तो असुर बनाना।
अतिशय अच्छा लगता है मुझको यह आना जाना ।।
सैंधवी प्रेयसीसे क्यों मेरी है दृष्टि उलझती।
वह भाव ताड़ लेती है पर भाषा नहीं समझती ।।
इच्छा, रुचि और उमंगें मनमें भरकर दे आया।
संसार छोड़कर भी मैं क्या सार नहीं ले आया ?
सुंदरियोंके दर्शनकी क्या इच्छा पूर्ण नहीं की।
सुंदर शिवको भजता है चल चाट न धूल वहीं की ।।
वह वरें न चाहे तुमको तुम तो उनको वर लेना।
है कृपा भाग्य की कितनी यह प्रश्न कभी कर लेना ।।
आदेश चन्द्रबदनीका 'ईश्वरसे भी कुछ डरते।'
संध्या में संधि हुई है पंडित जी अब क्या करते ।।
सारल्य कुटिलता में है कौटिल्य सरलता में है।
अपख्यात प्रणय - अज्ञानी तेरा सब जनता में है ।।
तेरी सामान्य कृपासे क्या क्या मैं लख लेता हूँ।
हे प्रेम ! चिरंजीवी हो, आशीर्वाद देता हूँ ।।
इस विरह निशामें कब तक निश्चल तुमको पाऊँगा ।
ध्रुव देव यही अब ध्रुव है मैं भी ध्रुव बन जाऊँगा ।।

वाणी यदि स्ववश रहेगी सब कुछ उससे कह देगी।
स्वामीके सम्मुख रमणी रमणीको कहाँ सहेगी।।
ऋतुराज, प्रेयसी, यौवन, एकान्त सुरा फिर उपवन।
उपलब्ध भाग्य से ही है, कर डालो जो कहता मन।।
आजन्म नहीं कह पाये अब कहकर कहाँ रहेंगे।
जो इस मनकी इच्छा थी अब तो भगवान कहेंगे।।
सम्पूर्ण हृदयकी गाथा सुन लो तुम मेरे मन से।
निन्दा ऐसे सज्जनकी करवा लो इस दुर्जन से।।
प्रेमोन्मादने भी तो अक्षरशः द्वैत दिखाया।
हा! प्रेम-तत्व बिसराकर, उन्माद जगतमें गाया।।
अविनाशी नष्ट मुझे कर, उरमें प्रकाश ऐसे हो।
उत्पन्न करे जो तुझको, उसका न नाश कैसे हो।।
दीपक कर भस्म पतंगा सारी रजनी जलता है।
हाँ प्राण गँवानेवाला, आनन्द-पूर्ण रहता है।।
शब्दोंके इस संग्रहको मत मेरी कथा समझना।
मेरे दुखको दुखप्रद है वाणीसे व्यर्थ उलझना।।
अस्तित्व मात्र भी मेरा आवरण हो गया बाले।
तो दूर इसे भी कर दे छविमें ही इसे मिला ले।।
वह चन्द्रमुखी घरमें है चाँदनी परन्तु कहाँ है।
पहले तो वहाँ सुनी थी पर अब तो सुनी यहाँ है।।
बालक निश्चल रह लेगा यह ही विश्वास नहीं है।
यह प्रेम तत्व है पुत्रक समझो उपहास नहीं है।।
वह हमसे विमुख रहे थे हम उनसे विमुख रहे हैं।
बलि तुल्य काल कलनाको अधिकृत कर सौख्य लहे हैं।।
ईश्वरको सुंदरियोंका यह दास नहीं भज सकता।
इसने जगको तज डाला जग इसे नहीं तज सकता।।
हाँ इन्द्रसभा से उरमें उर्वशी कई लाया हूँ।
देखो सातों लोकोंसे क्या शीघ्र लौट आया हूँ।।
क्या प्रेम गरल पीनेसे अवशिष्ट न कुछ रहता है?
प्रेमिका-लीन होनेको तू व्यर्थ नष्ट कहता है।।
यह है समाधि प्रेमीकी प्रियतमे! इसे तुड़वा दो।
प्रेमीका चिह्न कहीं भी क्यों रहे आज सिखला दो।।

ले पत्र पत्र उपवनका तेरा समुचित दर्पण है।
प्रत्येक पुष्प ही खिलकर इन चरणोंमें अर्पण है॥
मन्दिर हो वा मखशाला यदि कुछ प्रकाश पाता है।
तब तो पतंग बिन निर्णय बलिहारी ही जाता है॥
दो द्वार स्वीय गृहके हैं प्रियतमे तुझे समझाता।
है एक तुम्हारे घरको, दूसरा ब्रह्म - पथ जाता॥
यदि चिता मध्य भी तुमको प्रतिद्वन्द्वीसे रत पाऊँ।
तो सत्य शपथतः सुन लो मैं बिना अग्नि जल जाऊँ॥
पर्यंक शयन - कारिणि तू करवट क्रीड़ा क्या जाने।
उस विरह निशाकी घटना सुनकर भी तू क्या माने॥
मंगला - चरण ही में तू क्यों, मूर्ख प्रेम कहता है।
देख इसकी इति तक भी क्या तू जीवित रहता है॥
है प्रेम्य नेत्र ने तेरे धोखा सम्भवतः खाया।
जो प्रतिद्वन्द्वीके तनमें प्रतिबिम्ब हमारा पाया॥
मेरा भी उस बालासे हे देव ! पड़ा क्यों पाला।
नित स्वामी-स्वामी कहकर बस स्वामीजी कर डाला॥
तू पाँच वस्त्र धारण कर ले पंच तत्त्व - मय हो जा।
वा मेरी दो चादर ले परलोक लोकको खोजा॥
वह पिप्पलाद[1] भी जिसको 'एतावदेव' कहता था।
वह प्राण ब्रह्म मेरा तो प्रियतम के प्रति घर रहता था॥
अग्निने वायुने लखकर भी क्यों न उसे पहचाना।
बिन देखे भी मघवनने सम्पूर्ण रीतिसे जाना॥
नचिकेताके जीवनसे शिक्षा सब जग यह लेवै।
बालक यदि हठ कर ले तो यमराज अमर कर देवै॥
मेरी वंशी सुनकर भी जिसका न हृदय भर पाया।
वह प्रेम्य नहीं प्रस्तर है वा विभ्रम-कारिणि माया॥
मूर्खातिमूर्ख पर भी जब यह यौवन आ जाता है।
तो ब्रह्मावत मतियुत हो वह स्वीय सृष्टि पाता है॥

---

१. अथर्ववेदशाखा प्रवर्तक एक ऋषि, जिन्होंने पिप्पलाद सूत्र तथा पिप्पलादोपनिषदकी रचना की।

विद्वानोंको भी यौवन वसुधासे ऊपर लाता।
चाहे न स्वर्ग पहुँचावे पर छत तक तो ले जाता॥
इतना अधीर हूँ मैं तो उसको आना ही होगा।
हे पैर! पैर पड़ता हूँ लेने जाना ही होगा॥
सौरभ - विहीन पुष्पोंको कंटकसे घृणित बताया।
इस भाँति मुझे नारदने वैराग्य भाव समझाया॥
शतशः दल हैं पुष्पोंमें हाँ एक भ्रमर है स्वामी।
कामिनी कृष्णकी लाखों हृत्काम्य एक था कामी॥
दुर्गा बनकर भी बाले शिवकी दुर्गति क्यों करती।
क्यों चण्ड कामरूपीका वधकर न हमें तू वरती॥
काशी - वासी होकर वह पुष्कर वास्तव्य हुवा है।
मानों शिवका बेटा हो ब्रह्माकी गोद गया है॥
वह अन्नपूरणा माता अबतक पालन करती है।
शारदा प्रेयसी बाला पितु - मातासे डरती है॥
ब्रह्माका इष्ट किया था यमको गुरुदेव बनाकर।
नारदने ज्ञान सिखाया वीणाका तार बजाकर॥
प्रस्थान समय शंकरने सब स्वीय शास्त्र दे डाले।
ब्रह्मासे श्रुतिएँ पाईं अब प्रेमपुंज हैं पा ले॥
स्वामीका उर काहेसे बाले निर्मित रहता है।
तू स्वामी कह थकती है वह प्रिये नहीं कहता है॥
शिशु समय कहा था माता यौवन में भगिनी जाना।
अब पुत्री कौन समय में कहना न प्रेयसी जाना॥
विषयोंमें सुखका अंकुर भी मिलता मित्र कहीं है?
जो वीर्य नष्ट कर डाले वह तो आनन्द नहीं है॥
प्रेमित जिसमें रहते हैं वह मेरा हृदय यही है।
सौन्दर्य - मयी प्रतिमासे नित करता विनय यही है॥
हैं प्रेम्य सभी हृदहारी प्रेमी सौन्दर्याकर्षक।
बस प्रेम मंचशालाका इतना ही अभिनय द्योतक॥
प्रेमी सौन्दर्याकर्षकपर प्रेम्य नहीं हृदहारी।
यह एक दोष लखकर ही हमने सुधि सभी बिसारी॥
भावुकता, कोमलतासे निकटस्थ हुए कहते हैं।
आपके तुल्य प्रेमी - गण क्या जीवित भी रहते हैं?

प्रेयसी लिखित करुणामय मम गेह पत्र आया है।
तुमने प्रेमी बननेका उपयुक्त दण्ड पाया है॥
नल, राम, कृष्ण अज आदिक मिलकर सब ही कहते हैं।
कलि युगमें तो स्वामी ही प्रेमाप्रणीय रहते हैं॥
उर मन्दिरमें तू आ जा यह गेह नहीं कानन है।
मेरी राधा ! तेरा अब बरसाना वृन्दावन है॥
हे शशि वदनी ! अनुनय है यदि मैं कदापि मर जाऊँ।
तेरे पद - पंकजपर ही होकर बलि यमपुर जाऊँ॥
तुम अपने कर-कमलोंसे मेरा शव मत छू लेना।
सब प्रेम-भाव बिसराकर हँस-हँसकर अगनी देना॥
सुन्दर पुष्पोंसे अपना श्रृंगार आप करवाना।
मृत देह न दूल्हा होवे पर तुम दूल्हन बन जाना॥
मेरी अन्तिम इच्छा है बस भूल मुझे तुम जाना।
उस चितादाहसे पहले कोई प्रेमी कर लाना॥
प्रेमाश्रुधारसे देखो ज्ञानाग्नि आज बुझती है।
शीतल स्वभाव स्मृत करके उरमें पर आग लगी है॥
आकृष्ट मुझे करता है कुल - बन्धन मुक्त करा दे।
इनसे कुछ विलग कराके फिर चाहे जहाँ मिला दे॥
अवकाश कहाँ है मुझको जो कर्म कोई कर पाऊँ।
आकाश कहाँ है बोलो अन्ततः कहाँ मैं जाऊँ॥
वह हृदय - हीन सहृदयका क्यों प्रेम्य हुई जाती है।
आवश्यकता आज हृदयकी वह यौवनमें पाती है॥
यौवन मदमातीकी भी लालिमा आज नीली है।
इसने भी आज कहीं क्या सस्ती मदिरा पी ली है॥
सौन्दर्य, प्रेम दोनों ही उपवनका मैं माली हूँ।
पुष्पोंके संरक्षण को देता रहता ताली हूँ॥
जीवन संगी बिन जीवन इस जगमें व्यर्थ रहा है।
मरनेसे प्रथम गुरुने हमसे यह वाक्य कहा है॥
वेदना हृदयमें मेरे जब प्रेम - जन्य होती है।
चारो ओरोंसे ही तब बस धन्य-धन्य होती है॥
वह नहीं ! नहीं ! कहकर भी मेरी शय्यापर आयी।
अन्तता दुपैमि सत्यंकी तब बात समझमें आयी॥

हम अतिशयोक्ति करते हैं केवल बस खेद यही है।
तुम भी पढ़कर कह दोगे कलियुगका वेद यही है॥
नैसर्गिक छवि वाली तो सर्वदा दूर रहती है।
अप्सरा वही तो है जो अपसर अपसर कहती है॥
प्रेमी-रविकी सत्तासे जीव शशि-प्रेम्य मलिन हो जाता।
उसके गत होते ही यह अपना सौन्दर्य दिखाता॥
विद्वान व्यर्थ ही तैंने मदिरालयको फोड़ा है।
सोचा न यहाँ तो हमने बिंदु भी नहीं छोड़ा है॥
पंकज मीनादि दृगोंसे किसको पुष्कर लखता है।
किसने पानी कर डाला यह किसका रस चखता है॥
निन्दा शिवकी करते हैं श्रीमें आसक्त हुए हैं।
शिवके कारण ही देखो सब वैष्णव भक्त हुए हैं॥
हरि हरसे केश स्तनोंसे शिक्षा लेकर कहते हैं।
गोरे काले समयोंपर ऊँचे नीचे रहते हैं॥
नखसे शिख तक सब अवयव सुन्दरताके ग्राहक हैं।
सौन्दर्य मार्गमें सारे सुन्दर सुन्दर वाहक हैं॥
इतना दृग-नीर बहाया नभ हृदय स्वच्छ कर डाला।
है ज्योति नष्ट यद्यपि पर यह प्रेम-सिन्धु भर डाला॥
व्रतचर्या या कामुकता इनमें अभेद मिलता है।
उसको शिशु भी कर लेते इसमें ही उर छिलता है॥
बस एक प्रेम्य चुम्बनसे हम अब तक आस्वादित हैं।
जनता यह ही समझी है यह मदिरा मद मादित हैं॥
किसको फिर यह खोजेगा जब अपना मन मैं ही हूँ।
मेरा कुछ कहीं नहीं है मेरा तो बस मैं ही हूँ॥
वे आठ अमर हैं फिर भी एकाकी ही फिरते हैं?
देखो हम मरकरके भी होकर असंख्य गिरते हैं॥
जिसकी कवितामें इतना माधुर्य तुम्हें मिलता है।
किस किसके मीठे चुम्बन लेकर वह यह लिखता है॥
पैरोंसे लग लग करके कर ग्रहण आज करती है।
मेहँदी बस शेष यही है क्या शिरपर चढ़ सकती है॥
मति, ज्ञान, बुद्धि तुम रख लो अज्ञान हमें प्यारा है।
मदका भी ज्ञान नहीं था तब ही समझे सारा है॥

वत्ती ही जले प्रगटमें प्रच्छन्न तेल जलता है।
कितना अज्ञानी जग है कहता दीपक जलता है।।
रवि अस्त नारि गृहमें है फिर सप्तमेश अष्ठम में।
रमणी किस भाँति मिलेगी लो शुक्र गया षष्ठम में।।
अब मान्य हुई है कुछ कुछ मतिको ज्योतिषकी माया।
वृश्चिक के शशिने मनको यह वृश्चिक प्रेम लड़ाया।।
दंडी यदि मैं ईश्वर हूँ कह, क्यों लज्जा आती है?
मेरी माया ही मुझको कैसे खाये जाती है।।
दंडी निश्चय अन्धा था सौन्दर्य नहीं लख पाया।
उसको टटोलनेको यह ईश्वरने दंड दिलाया।।
धिक है तेरी मतिपर तू सबको है ब्रह्म बताता।
केवल मेरी बालापर क्यों द्वैत भाव है लाता।।
तू तो मदिरा पी-पीकर उन्मत्त हुआ फिरता है।
ईर्ष्यालु कहें क्या तुझको हमको निषेध करता है।।
प्रेम्यसे प्रेम तजनेकी तू हमको समझाता है।
उपदेशक तेरी मतिपर मेरा मन मुसकाता है।।
हमने भी उस देवीसे श्रद्धामय प्रेम किया है।
भगवती प्रसाद समझकर मदिराका पात्र लिया है।।
हूँ मद्य प्रणेता यदि मैं सौ जीवन भी पा जाऊँ।
प्रत्युपकारी बननेका तब भी अभिमान न लाऊँ।।
अभ्युदय सिद्ध है अपना सब जगको बिसराया है।
इस भाँति धर्म भी हमने मदिरा ही से पाया है।।
शतशः चुम्बन करके भी क्यों तृप्त नहीं होता हूँ।
जिसने खोया मुझको था मैं उस मदको खोता हूँ।।
है मीन[1]नयन,मुद्रा[1]गति,मदिरा[1]छवि, आमिषमांस[1]चुम्बन।
कुछ कौल धर्मसे भय है 'अन्यथा श्रेष्ठ था मैथुन[1]।।
देखो प्रयोग यह मेरा नूतन है तथा निराला।
संकल्प मात्रसे उसको सुन्दर कितना कर डाला।।
मैं तो निमित्त कारणका सामान्य भाष्य करता हूँ।
अपने निमित्त जीता था तेरे कारण मरता हूँ।।

---

१. पंच 'मकार'—मीन, मुद्रा, मदिरा, मांस, मैथुन।

वस्त्रोंके रंग लेनेसे संन्यासी कब होता है।
वह तो केवल भिक्षुक है स्वामित्व स्वयं खोता है॥
सौन्दर्य क्षणिक पुष्पोंमें हेमन्त भीत सब डाली।
दो ही लक्षणसे उपवन हमने तेरी गति पा ली॥
सरिता सागरका संगम पाकर भी बहती रहती।
इस भाँति ब्रह्मज्ञाताको कर्मोंका करना कहती॥
हिम-शृंगोंपर झरनोंसे अद्वैत ज्ञान पाया है।
मरुभूमि देखकर मतिमें फिर अनेकान्त गाया है॥
ऋषि दल, पंडित मंडलमें हम कभी नहीं जाते हैं।
कारण यह है वह सारे मेरा गायन गाते हैं॥
तजकर शरीर ही प्रेमी प्रेमितमें लय होता है।
यह प्रेम रोग सत्वर ही क्षय करके क्षय होता है॥
तेरे प्रेमीका प्रेमित नारदसे अधिक अटन है।
ध्रुवसे भी अधिक लगन है तुलसीसे अधिक रटन है॥
निजको उन्मत्त बताता सब जगमें बकवादी हूँ।
इतना तो ज्ञान मुझे है फिर भी क्या उन्मादी हूँ?
देखा ही नहीं जिन्होंने वह ही सन्तोष करेंगे।
निश्चय हमने कर डाला सन्तोष-विहीन मरेंगे॥
विद्या जब पढ़ी 'दहर' की तब शून्य हृदयको जाना।
स्थापना किसी ईश्वर की इसमें करना तब माना॥
अपनी अपनी रुचिमें वो संसार बँधा करता है।
किस कारण मेरी रुचिसे मेरी निंदा करता है॥
दुर्भागी हूँ हे बाले ले मेरा भाग्य जगा दे।
अपने मस्तकका मेरे सिरपर सिन्दूर लगा दे॥
तेरी उपमा यदि रति भी निद्रामें ही सुन पावै।
तो गर्व मात्रसे उत्थित सीधी नभको चढ़ जावै॥
उसके समक्ष जानेसे कुछ ज्ञान नहीं रहता है।
मुझ पंडित को इस कारण वह मूर्ख सत्य कहता है॥
उसके केशोंसे मतिपर यों अंधकार छाता है।
जो ब्रह्म-ज्योतिसे भी तो अब ज्ञान न लख पाता है॥
कृशताने ही प्रेमी को देखो विजयी कर डाला।
शय्याको शून्य समझकर सो गई स्वतः वह बाला॥

अनुचित न कहो तो कह दें इस जगमें क्या पायेंगे।
दूल्हा बनकर आये थे दूल्हन लेकर जायेंगे॥
रख प्रेम्य रूप ईश्वर ही जगमें बहुधा आता है।
उसका अनन्त प्रेमी ही अन्ततः उसे पाता है॥
सन्ध्या मैं वहीं करूँगा रजनी जिस ठौर कटेगी।
एकाकी की सन्ध्या क्या ! सन्ध्यासे शक्ति घटेगी॥
इस भस्मीभूत हृदयसे वह प्रणय नहीं करती है।
वैष्णव कुलजा है देखो भस्मादिकसे डरती है॥
रुद्राक्ष भस्म मेरे हैं तेरे कपाल विषधर हैं।
यदि एक कभी होवें तो हम दोनों ही शंकर हैं॥
यदि पुण्यभूमि भारतमें यह मेरा जन्म कराया।
तो हे भगवन कह तो दो क्यों प्रेमी हृदय बनाया॥
उसकी वाणी ही श्रुति है उसकी छवि ही तो स्मृति है।
उसकी गति जैसी भी हो मेरी तो वह ही गति है॥
पुण्यसे स्वर्ग जाऊँगा मैं प्रेम नहीं करता हूँ।
स्वर्गिक अप्सराओंका कुछ पाठ पढ़ा करता हूँ॥
है स्वर्ग कहाँ सोचो तो वा कौन स्वर्ग जाता है।
कल्पना मात्रसे उसकी आनंद यहाँ आता है॥
युवतीका अनुचित अनुनय किस भाँति सफल करवाऊँ।
इस ब्रह्मचर्य आश्रममें कैसे गृहस्थ बन जाऊँ॥
रणसे वा स्वयंवरोंमें यद्यपि न उसे जीता है।
केवल वियोग रोदनसे हम राम हैं वह सीता है॥
यदि रेफ[1] क्रोध वाचक है तो वह उसमें आधा है।
हमने आकृष्ट किया था हम कृष्ण हैं वह राधा है॥
इस ग्रहण पर्वमें सूतक समझाने तू आया है।
मैं तो नृरूप राहू हूँ प्रति निशिमें शशि खाया है॥
पत्रोत्तर भी लेकरके वाहक न निकट आया है।
मानों पथमें ही मुझको वह मृतक जान पाया है॥
निर्लज्ज सलज्ज हुआ है कहते हैं लोग ग्रहण है।
पर अधिक काल लज्जा भी करने का उसको प्रण है॥

---

१. 'र' वर्ण।

मनको लख क्लीव तुम्हारा क्यों हृदय काँप जाता है।
यह दूत मात्र हैं पीछे पुलिग अभी आता है॥
दर्शन मदिरा पीनेसे दृग मद सब दूर हुआ है।
मदमत्त मद्यका मादक मानों कर्पूर हुआ है॥
जिसने उस कोमल मुखके होठोंका चुम्बन पाया।
आजीवन उसके मुखसे कटु शब्द नहीं सुन पाया॥
प्रेममें लालिमा लुटती तनपर पीतत्व दिखाता।
मानों यह सिद्ध रसायन ताँबेको स्वर्ण बनाता॥
इस हृदय द्रव्यके कारण मैं जीवन धन रखता हूँ।
यदि यह स्वीकृत है तुमको तो मैं यह भी तजता हूँ॥
ब्रह्माका दिन कल्पोंका क्यों है हम तुम्हें सुनावैं।
बुड्ढे विरही होते हैं पलको भी कल्प बतावैं॥
जिनको तेरे मिलनेकी इच्छा उनसे क्यों डरना।
उत्सुक हैं गले लगेंगे वृद्धावस्था वा मरना॥
गुरु गत है क्या चिन्ता है हम ज्ञान सिंधु भर देंगे।
चारों वेदोंकी टीका मदिरा पीकर कर देंगे॥
सुन्दर बालाओं से जब मेरी रजनी कटती है।
तब हे उपदेशक तेरी कह क्यों छाती फटती है॥
थोड़ा सा ही जीना है फिर हम क्या देखें जगको।
अतएव विज्ञ जाते हैं प्रेयसी गेहके मगको॥
बाले जाकर मेरे ही घरसे तू मदिरा ला दे।
मुझको तुझसे पीनी है कुछ भी कर किन्तु पिला दे॥
प्रेमी बनकर भी तुझमें यदि नहीं प्रणय पीड़ा है।
तो प्रेम्य, हृदयमें बरबस तेरे कारण व्रीड़ा है॥
पुण्योंको विक्रय करके अपनाम क्रीत कर लूंगा।
बंधक रख उपनिषदोंको बालाओंको वर लूंगा॥
जगसे बचनेकी मनमें जब भी तेरे आएगी।
तबही यह माया ठगिनी बाला मदिरा लाएगी॥
पुष्करवासी संन्यासी ज्ञानी होकर फँसता है।
श्रुति-तत्व महाभारत हो तब कौन नहीं हँसता है॥
केवल यह सुनकर मुझको गिरकर भी रोष नहीं है।
स्वामी ऐसा करनेमें किंचित भी रोष नहीं है॥

दो शब्दोंके विनिमयमें मैं हाय हो गया कामी।
कैसे मैं 'प्रिये' न कहता जब वह कहती थी स्वामी॥
मुक्तादशनी मुखसे ही आती कोमल बानी है।
मोती फिर मोती ही क्या यदि अनुपस्थित पानी है॥
गुरुदेव आ गया यौवन अब वेद दूर धरने दो।
प्रणवोच्चारणसे पहले प्रणयोच्चारण करने दो॥
जब सब तुझको भूलेंगे मैं तेरा स्मरण करूँगा।
तेरे मुझको वरनेसे पहिले तुझको वर लूँगा॥
वेदसे मांस और मदिरा दो तो हमने पाई हैं।
हाँ अस्थि, त्वक नख लोम तो सब जगको दिलवाई हैं॥
सुन्दरी बनी सुन्दरता यौवन युवती बनता है।
बलिहारी जाते जाते दोनोंमें रण ठनता है॥
ज्ञानीकी तो इच्छा है वह वाचस्पति कहलाये।
कर्कशा दृष्ट भी होकर वह कर्कराशि पा जाये॥
आरण लाघव दिखला दें इस रणमें कौन लड़ा है।
तेरा सौन्दर्य बड़ा है वा मेरा ज्ञान बड़ा है॥
हे गणक गणित कर कह दे गणिकाका गण आता है।
तेरी इस गणन क्रिया तक क्या जीवन बच पाता है॥
गृहिणीको गृही न लाया इच्छा निस्पृहमें ही है॥
होकर गृहस्थ कहते हैं गृहका धन गृहमें ही है।
इच्छा युवती गोदीसे जब तक न उतर जायेगी।
तबतक वह सौत विरोधिनि रमणी न निकट आयेगी॥
मत त्याज्य इसे कह दंडी बाला भोली भाली है।
तेरा चुम्बन कर लेगी यौवनमें मतवाली है॥
हो देव दमन कर डाला राक्षस हो दया दिखाई।
बन मनुज दान भी कर दो है प्रेम ब्राह्म सुखदाई॥
यदि प्रेम पाठ पढ़ना है तो होगा पहले मरना।
तेरी जब इति हो जावै तब ही इसका अथ करना॥
नवजात अश्रुओंने भी उरकी अशान्ति समझा दी।
पहले जन्मोंकी मानों बालकने कथा सुना दी॥
वृद्धावस्था से पहले ऐसा अपना निश्चय था।
शैशव सच्ची गाथा थी यौवन झूठा सपना था॥

यदि इस जीवन ही में मैं सब इच्छा पूर्ण कराऊँ।
तो फिर ईश्वरके सन्मुख क्या क्या लेकरके जाऊँ॥
सब रात वही दुख पाया अबतक वह ही रोना है।
निद्रा विहीन है फिर भी विश्राम हेतु सोना है॥
पंडित पुष्पोंके ऊपर क्या ओस बिन्दु बतलाया।
हृत्प्रेम्य रूप लखनेसे मुँहमें पानी भर आया॥
मतिसे मेधासे श्रीसे जब तक आसक्ति रहेगी।
तब तक गर्विणी प्रिया भी तुमसे नित दूर रहेगी॥
उस प्रेम्य चिताकी ज्वाला लकड़ीसे प्रथम जली है।
मानों कोई मृगनयनी काषायी हो निकली है॥
उपवन संगीत सुरा हो प्रेम्यने चिबुक थामी हो।
तो हम निश्चय कहते हैं यह स्वामी भी कामी होवे॥
निर्दोष ब्रह्म वे हैं जो प्रियतमा तुझे कहते हैं।
हम दर्शन करनेमें भी देखो सदोष रहते हैं॥
सौन्दर्य प्रेमके रणमें है भीष्म भीम धन यौवन।
कर्णार्जुन नयन हृदय हैं है कृष्ण नयनको चितवन॥
यह विषय कभी मत सोचो अबसे ही कामुकता है।
इस बालककी कवितामें वृद्धोंकी भावुकता है॥
संकल्प मात्रसे मैंने यह पाँचों तत्व रचाये।
मदशमन हेतु अपने ही मैंने ही वेद बनाये॥
आनंद सिन्धु हूँ मैं तो दुख निकट नहीं आते हैं।
मदसे पड़ोसके मेरे दिनमें भी सो जाते हैं॥
उपनिषद मनन करके भी ज्ञेयको ध्येय समझा हूँ।
यमद्वार खड़ा होकर भी प्रेयको श्रेय समझा हूँ॥
सहृदय ही तो इस जगमें निज भक्तोंको वरती हैं।
सौन्दर्यमयी प्रतिमाएँ नरमेध किया करती हैं॥
लक्ष्मीवाहनकी संगति भी अतिशय हमें सुहाती।
लक्ष्मीविहीन नारायण होनेमें लज्जा आती॥
एक ही लग्नमें देखो दोनोंका जन्म हुआ है।
यह प्रेम-रूपका जोड़ा अन्योन्याश्रित हुआ है॥
मदिरामय गृह है फिर भी दीपक जलता घीका है।
आठों मैथुनमें से भी प्रण लिया एक ही का है॥

मरकर इतना ही दुख है अन्यथा कीर्ति बढ़ती है।
जिसपर हम नित चढ़ते थे वह भी ऊपर चढ़ती है[१] ॥
वर देनेमें भी छल था यमराज न लज्जा आई।
जो आठ वर्षके शिशुको अप्सरा, सुरा दिखलाई ॥
चित शक्ति देखते ही बस चेतना नष्ट हो जाती।
अन्यथा चेतना मेरी मुझको चैतन्य बनाती ॥
मेरी प्रतिभा कितनी है ले मूर्ख तुझे लिखवाऊँ।
रावण सायण उव्वटको चौरासी वर्ष पढ़ाऊँ ॥
हाँ श्राद्ध पतंगेका तो करनेमें दीप जलेगा।
हाँ श्राद्ध दीपका करने अब कौन विहान चलेगा ॥
ईश्वर बनकर ईश्वरसे कुछ ईश्वरत्व ले लेना।
इस भक्ति तरणिमें थोड़ा धर ज्ञान भार खे लेना ॥
यदि तुम जीवन दाता हो तो फिर भी जी जाऊँगा।
मुझको अब मत जीने दो यों तो मैं मर जाऊँगा ॥
निन्दाका पात्र जगतमें क्या कोई कभी कहीं नहीं है।
उसके शरीरमें निन्दक तू ही तो कहीं नहीं है ॥
उस केशपुंजके पीछे मणि तेज न लख पाता है।
जब लक्ष्मण राम यहीं हैं तू क्यों मन्दिर जाता है ?
मद्यप हूँ कब वसुधापर यों व्यर्थ मित्र फिरता हूँ।
जग मद्यालय है इसकी प्रत्येक सुरा चखता हूँ ॥
पुष्करमें ही रहने को क्यों वेद मुझे कहता है।
बस यही नयन है जिसमें वह नयन नयन रहता है ॥
गुरु होनेकी अभिलाषा क्यों मूर्ख शिष्य करता है।
है नियम डूबता गुरु ही हाँ शुष्क शिष्य तरता है ॥
विधिका सौन्दर्य तभी है जब हो निषेध भी जगमें।
सुखसे है भोग कराती जो कहती 'ना' 'ना' मगमें ॥
इस विश्व पथिकशालामें सत्पथिक नहीं टिकते हैं।
रजनी निवास करते हैं प्रातः उठ चल देते हैं ॥
उस विरह व्यथा का क्रन्दन अनुचित माना जाता है।
निशिमें अग्न्याराधन यह कब उचित कहा जाता है ॥

---

१. यहाँ अर्थ धूल से है। मृत्योपरांत धूल ऊपर चढ़ती है।

हे शक्ति बिना शिवके तू एकाकी क्यों फिरती है।
है धन्यवाद उस शिवका जो शक्ति मात्र रहती है॥
सौन्दर्य तेजसे तेरे मम दृष्टि शक्ति जलती है।
मन, बुद्धि, चित्त आदिक की भी दाल नहीं गलती है॥
मित्रो अब उस युवतीसे जाकर इतना कह देना।
अन्याय भले ही तू कर पर न्याय नहीं तज देना॥
उत्सुक हो भी पुरुषोंसे डरती रहती है बाला।
कानोंमें शब्द न डाले डाला भी तो क्या बाला॥
यदि सच्चरित्र है तू तो सब विश्व पवित्र रहेगा।
वह मित्र हो गया तेरा तो कौन अमित्र रहेगा॥
ईश्वर दयालु है तो फिर पापी भी कौन रहेगा।
पापोंका फल ईश्वर है किसको तू पुण्य कहेगा॥
चितवन करें हम उसका वा करें विचार हमारा।
अब मोक्ष सिन्धुमें डूबैं वा लखैं प्रेम की धारा॥
जो तुमने कर डाला है रिपुसे संभाव्य नहीं है।
फिर भी अतिरिक्त तुम्हारे अपना भवितव्य नहीं है॥
उस ज्ञान योग वंचितसे कब सद्व्यवहार हुआ है।
समझे बस प्रेम तरणिसे भवनिधिके पार हुआ है॥
मंडपमें भोग किया क्यों ? सजनी आ गई वहाँ ही।
फल था परोक्षमें मखका हमने ले लिया यहाँ ही॥
बालक-सा जान हमें ही यह ऋतु वसन्त उकसाती।
इन दक्ष चतुर वृद्धोंके सन्मुख यह कब है जाती॥
तेतीस देवताओं का अब इष्ट नहीं सुखकर है।
देखो मम प्रेम्य सदनमें अवशिष्ट एक ईश्वर है॥
जीवनके क्षेत्र सुखद हैं वह ही पानी देती है।
सौन्दर्यवती रानी है मन चतुर्थांश लेती है॥
छवि क्षत बैठे पत्तोंमें मानों हैं सेंक कराते।
लज्जासे लाल सुमन हैं भयसे पीले पड़ जाते॥
मेरे समाधि स्थलपर तुम पाषाण खण्ड लगवाना।
'देखो' 'मुसकाना' ये ही उसमें दो शब्द खुदाना॥
हँसकर प्रणाम करती है वस्त्रादि कभी धोती है।
पर मनकी जो इच्छा है वह पूर्ण नहीं होती है॥

जो प्रेमनगर वासी है वह कब काशी आता है।
प्रत्येक जीव उस पुरमें ईश्वर ही बन जाता है॥
कब विश्व ज्योतिने जगमें पुष्पों से अतर बनाया।
सौन्दर्य देखकर उसका प्रत्येक पुष्प सलिलाया॥
कौमार्य, रूप, चंच लता वा रोप प्रसव करती है।
प्रेयसी हमारी तो वस गर्भिणी सदा रहती है॥
अंधेर किया राधाने वा कहो किया उजियाला।
देखो जगके रक्षकको अपना भक्षक कर डाला॥
उसके घर ले चलता हूँ तव देखूं क्या कहता है।
उस रम्य सुधाको पीकर कबतक पवित्र रहता है॥
हैं भोग्य नारि कहलातीं मुझमें भोक्तृत्व कहाँ है।
यदि प्राण बनूँ मैं ही तो जगमें रयितत्व कहाँ हैं॥
जगदीश्वर जव चाहेंगे तब सब कुछ हो जायेगा।
तेरे रोनेसे पगले कबतक कितना पायेगा ?
पांडित्य मौर्ख्य तो इसका ईश्वर ही कह सकता है।
हम तो समझे हैं स्वामी सृष्टिमें ठाठ रखता है॥
जव प्रेम्य गेहसे प्रमुदित अन्योंको आते लखता।
तव प्रथम दिवस सम्मेलन अपना स्मृत कर मैं हँसता॥
विद्वान् श्रौतको भी तो प्रेयसी प्रेम होता है।
देवासुर युद्ध यही है मन इन्द्र नष्ट होता है॥
चिन्तन, हृत्कम्पन, रोदन, विक्षेप, अश्रु आते हैं।
चतुसाधन सिद्ध मनुज भी पंचत्वभाव पाते हैं॥
पुष्पोंपर आकर्षित हैं पर यह न जान पाया है।
क्या वर्ण गन्ध उनमें हैं कैसी उनकी माया है॥
प्रेमी होना अनुचित था पर दर्शक भी क्यों होवें।
यौवनमें प्रेम करें क्यों है श्रेष्ठ भक्तिसे रोवें॥
यह उपालंभ किस पर हो उनकी कृति मान्य हमें है।
चिढ़ना स्वभाव प्रेमितका प्रेमीसे ज्ञान हमें है॥
दर्शन, उरदान[1], विरह फिर करुणा क्रन्दन निशिवासर।
सहशयनेहासे यमपुर यह प्रेम सृष्टि सुखमाकर॥

---

१. हृदयदान।

हे हृदय तुझे भी कह तो उस बालाकी तृष्णा है ?
तनमें हो भली सुवर्णा पर मनमें तो कृष्णा है ॥
मुझको विरक्त-सा लखकर मुझसे यह प्रश्न किया है।
प्रेमातिरिक्त भी तुमने कोई उपदेश लिया है ॥
अद्भुत संन्यास हमारा निष्काम काम करते हैं।
सौन्दर्यमयी प्रतिमा लख नत हो प्रणाम करते हैं ॥
लखकर सौभाग्य हमारा ईर्ष्या न कौन करता है।
जो प्रथम मिलनसे रति थी अब नित्य पत्र चलता है ॥
जो मरे न निज इच्छासे सो तो मारा जाता है।
जो जिये स्वीय इच्छासे आनंद वही पाता है ॥
केवल दर्शन करवाकर मदिराका मात्र दुराया।
फिर ओझल हो सब पीकर मदमत्त हुआ लख पाया ॥
बाला अपनी, मद अपना, तरु स्वीय पुष्प भी देंगे।
फिर क्यों बसन्तका अनुनय ? जब चाहेंगे पी लेंगे ॥
मदिराके दोष शमन हित मैं पंचगव्य लेता हूँ।
फिर उसके पुण्य दलन हित निशिमें मदिरा पीता हूँ ॥
सौन्दर्य विश्व-भरमें है तुझको मैं क्या समझाऊँ।
नयनोंका ही यह हठ है मैं अपना तुझे बनाऊँ ॥
संगीत स्पर्श सौरभ है है स्वाद स्वरूप निराला।
मैं तो प्रति प्रतिपर मरता अब तो पंचक है बाला ॥
तुझसे पहिले ही मैंने कितनोंसे प्रेम किया है।
हाँ तब सौन्दर्य निधन तक अन्योंका नेम लिया है ॥
जो मूर्त मात्र है जगमें अन्वेषणसे मिलता है।
अन्वेक्ष्य प्रेम्य है मिलकर जो मुरझाकर खिलता है ॥
यदि विश्व नहीं रुचिकर तो फिर क्यों इसमें रहता है।
जो प्रेम्य रूप मंदिरमें क्यों कष्ट यहाँ सहता है ?
आसक्ति मात्र होनेसे हृत्प्रेम्य कृपा करता है।
वह स्वीय सहाय प्रदाता निज योग्य स्वयं वरता है ॥
भगवत्प्रेमी बनता है फिर भी भगवच्चिंतन है।
है पथिक भक्ति मगका तू वा यह तेरा ही मन है ॥
वह द्वेष नष्ट करती है इस हेतु मौन रहती है।
हाँ राग अमर है जगमें निज काम्य शान्ति लहती है ॥

तिथि, स्थान शोध्य हो ही क्यों जब प्रेम हमें करना है।
यह भी फिर क्यों हम सोचें जीना है वा मरना है॥
धन-यौवन क्षणभंगुर है जगको आदेश सुना दो।
मैंने तो धन लुटवाया तुम भी यौवन लुटवा दो॥
इस हेतु इन्द्रियोंका भी कहना हमने माना है।
गुरुमुखसे सुनकर इसमें देवता वास जाना है॥
है पुण्यवान वह जगमें जो श्रुति विरुद्ध जाता है।
विधिका निषेध करनेमें आनंद अधिक आता है॥
सच्चे प्रेमीसे जगमें सब प्रेम्य प्रेम करते हैं।
हैं प्रेम्य प्रशस्य वही जो झूठेपर भी मरते हैं॥
पार्थिव तन तेजस शोभा लावण्य नीर पयशाला।
उर शून्य चाल्प चंचलता परमेश्वर है वा बाला॥
जिनपर आसक्त हुआ हूँ वे कलियाँ कुम्हलायेंगी।
मेरे यौवन आने तक सारी मुरझा जायेंगी॥
क्यों विनय भाग्यकी अब हो घरमें है भाग्य-विधाता।
उसका चाहे मत होवे मेरा है उससे नाता॥
निर्विषय मुझे लखकर क्यों विषयी बालाने छोड़ा।
यों विषय भोगशालामें मुख, विषय-मात्रसे मोड़ा॥
जब द्वारपाल दश तेरे उद्दिष्ट विषय पायेंगे।
तब तुझ विषयी कामी को सद्ब्रह्म विषय लायेंगे॥
प्रच्छन्न मौन रहनेसे पर्याप्त शान्ति आती है।
हाँ इतना इनमें भय है प्रेमिकता मिट जाती है॥
किन्नरा अप्सरादिकको गधर्व, देव ले भागे।
तू जगमें शेष रही तो मैं आया तेरे आगे॥
यह तत्व सिखानेकी तो जगमें न पाठशाला है।
कितनी मेरी मदिरा है कैसी मेरी बाला है॥
रावण कैलास उठा ले बाणासुर सृष्टि सँभाले।
इनसे भी वीर वही है जो छविसे हृदय बचा ले॥
चित्रांगद सम हो मैंने गुरु भीष्मतुल्य पाया है।
चारों श्रुति-बालाओंको घर बैठे ही पाया है॥
उत्सुक हैं अधिक मिलनके अतएव नहीं सोते हैं।
इन अश्रु प्रवाहोंसे ही देखो हम मुँह धोते हैं॥

अमरत्व आज देते हो वह तो कल ही से मृत है।
प्रेमाग्नि कुंडमें मानों यह पूर्णाहुतिका घृत है॥
यदि हृदय दान करनेमें मनमें विचार आया है।
कुछ स्नेह दान कर डालो शनिवार आज आया है॥
रानी तव प्रेमकथाका सुन विरह खंड शिर धुन ले।
अहि-दमनी जनमेजय हो इस शुकसे भारत सुन ले॥
अपनी अपनी पदवीमें सब ही महत्व पाती है।
सरमें वनकी हरियाली काई ही कहलाती है॥
प्रियतमे ! न कह स्वामीजी मेरा जी 'कल पायेगा।
तेरे स्वामी कहते ही मुझमें जी आ जायेगा॥
हूँ ज्ञान-वृद्ध श्रुति-भाषी स्त्रीनयन कमलपर स्थित हूँ।
तब ही तो ब्रह्मा होकर सारे जगसे पूजित हूँ॥
रमणी अपख्याति कराती वा मेरी सुधि लेती है।
प्रतिद्वन्द्वीको भी मेरा प्रथमाक्षर कह देती है॥
सामान्य सूत्रकी स्थिति क्या कैसे न प्रतिज्ञा तोड़े।
जो प्रीति रज्जुको तोड़े वह इसको कैसे छोड़े ?
जिस दिन भी उस रमणीकी शोभा-मति धो जाती है।
तब तो बस निशि-भरको वह मेरी ही हो जाती है॥
विरहानल ऋक प्रस्तुत है यजु भी उच्छ्वास हुआ है।
क्रन्दन यदि साम बने तो रतिमें भी वेद हुआ है॥
हैं प्रेम सभीसे करते प्रेमी भी कहलाते हैं।
पर प्रणय-याचना करने हम कहीं नहीं जाते हैं॥
क्यों प्रेम्य गेहसे मेरा निस्तेज दूत आता है।
या तो उत्तर आता है या प्राण मेरा जाता है॥
लो चिता धूमसे भी तो मद गंध सुराका ही है।
ऐसे मद्यपकी प्रतिमा अब या पहले न रही है॥
यह पंचतत्व सम्मिश्रण पंचातिरिक्त इसमें है।
यह सुरा स्वयं ईश्वर है या शक्ति तत्व इसमें है॥
अल्पज्ञ-मात्र हैं जगमें ज्ञानी तो कहीं कहीं हैं।
इस हेतु भेद हम अपना बतलाते कहीं नहीं हैं॥
यदि प्रति विश्रामालयमें धमार्थ सुरा हम पावैं।
तो सत्य शपथतः कह दें सब तीर्थ आज फिर आवैं॥

अन्तिम आदेश सुना दूँ है कृपा इसी मदिराकी।
सब जग तो रोनेको है हँसनेको मैं एकाकी॥
जिस दिनसे ज्ञान लिया है तबसे मैं अज्ञानी हूँ।
अभिमान त्यागनेका भी देखो मैं अभिमानी हूँ॥
यह ब्रह्मज्ञानका पथ है जो प्रेम-विपिन कहलाता।
भयभीत चकित करके भी अन्ततः लक्ष्य तक लाता॥
यौवन विचित्र होता है है ज्ञेय प्रेम्य ही इसमें।
फिर प्रेमज्ञान होते ही प्रेमी लय होता उसमें॥
यदि ज्ञान नहीं मिलता है तो ले अज्ञानी हो जा।
इस हृदय भिक्षु प्रेमितके कारण तू दानी हो जा॥
जगमें इच्छुक रह जायें हम स्वीय धाम जाते हैं।
यदि जग स्मरणीय हुआ तो उलटे सत्वर आते हैं॥
विजयी हैं पर कहते हैं हमने यह रण हारा है।
इच्छाओंको भी हमने मरती लखकर मारा है॥
तज ज्ञान हुए अज्ञानी अब ज्ञेय बने जाते हैं।
तनकी अनित्यताको भी हम नित्य गिने जाते हैं॥
योगीकी योगक्रियाका हम ध्यान नहीं लाते हैं।
उसने भीतर ही पाया हम बाहर भी पाते हैं॥
केवल यह हृदय दिखाकर क्यों कन्याको ठगता है ?
यह सिरपर चढ़ जायेगी इसके मुँह क्यों लगता है ?
धनिकों, राजोंमें रहकर संन्यासी-मठ क्यों आई।
लख यहाँ वमन भक्षणका देवेगा दृश्य दिखाई॥
प्रस्थान समय मुझको लख हँस-हँसकर वह मुसकाती।
इस प्रेम-समाधि स्थलपर मानों है पुष्प चढ़ाती॥
उरमें ज्वर विरह कथाका क्यों झूम-झूम होता है।
मंदिरके जगमोहनमें यह यज्ञ-धूम होता है॥
वाणी यदि मेरी निकली नूतन श्रुति बन जायेगी।
बूढ़े ब्रह्माकी छाती यह लखकर फट जायेगी॥
मैं प्रेम किया करता हूँ यह तत्व न खोने देना।
इस बन्धन ही में सुख है अब मुक्त न होने देना॥
पत्रोत्तर पानेकी तो अपनी प्रारब्ध नहीं है।
वाहक आता जाता है उसको लख स्तब्ध नहीं है॥

उसका ग्राहक बनने में मुझको लज्जा क्यों आती ?
सुन्दरी प्रेयसी विदुषी है किसको नहीं सुहाती ?
केवल युगान्तमें शिवने तांडवसे हमें जगाया।
अन्यथा मोह-निद्रामें यह विश्व स्वप्न मन भाया॥
हम दोनों एक हृदय हैं तुम जानेको कहती हो।
यह कौन हृदय कह देगा कह-कहकर क्यों रहती हो॥
साधारण-सी घटनासे यों क्यों रोया करता है।
वनमें फिरता फिरता है घरमें सोया करता है॥
अधिकार प्रेमपर किसका यह लगे न लगवानेसे।
हो कृत्य प्रेम प्रेमीका पर हटे न हटवानेसे॥
कोमल कृपालु कर लखकर सब जगने प्रेम्य बताया।
पर मुझ-सा दुर्भागी तो प्रेमित न उसे कर पाया॥
मेरे शुश्रूषक सारे विस्मृत मुझको करते हैं।
उसके सन्मुख आते ही मृतके समक्ष मरते हैं॥
रमणीसे यह डरती है वा मृत्यु रही बौराई।
जब प्रेम्य गेह छोड़ा तो यह भी लेनेको आई॥
प्रकरण जब तेरा आया तब अश्रु उमड़ आया है।
मानों रविके रहते ही वारिद-सा फट आया है॥
लालिमा नहीं मदिरामें यह तो रक्तार्द्र रही है।
है रुधिर मिला इच्छाका लख छोटा पात्र वही है॥
कोई प्रेमी जब उसकी गलियोंमें से जाता है।
तो मत्त हुई हँस कहती वह उन्मादी आता है॥
वस्तुतः हमारी रुचि ही देखो विनाश करती है।
अपनी है पर अपनोंके वधमें न कभी डरती है॥
सुन्दरियोंसे इस मनको मुनि कैसे बचवाते थे।
फिर भी बातों-बातोंमें वह हृदय दिये जाते थे॥
अनुनय, अकृपा दोनों ही दोनों ही ओर छनी हो।
मारने तथा मरनेकी विधि अपने आप बनी हो॥
था शान्ति केन्द्र यह उर ही यह अभी-अभी जाना है।
जबसे वह चला गया है मैं हूँ अशान्त माना है॥
रोगीकी स्मृतिमें तुम भी रोकर रोगी हो जाना।
पर इतनी एक विनय है सौन्दर्य नहीं खो जाना॥

छविकी करुणा बाधक है मनमें न कभी आने दो।
इस रोगीको रहने दो मरता है मर जाने दो॥
अपना उन्माद दिखाने हम कब जगमें आते हैं।
उन्मत्त हमें सुन करके उत्सुक दर्शक आते हैं॥
देखते-देखते अपना यह हृदय चला जाता है।
पर हाय! हृदय-हारीका संकेत नहीं पाता है॥
वर्षोंसे हम विस्मृत थे फिर भी कोमल छाती है।
फल यह है अंग स्फुरणका संभवतः स्मृति आती है॥
जिसकी करुणा लखकर ही यह प्रेम रहा अभिमानी।
वह कहाँ गई, न मिली है सारे जगकी रज छानी॥
शिरपर भी चढ़ जाते हैं नयनों में पड़ जाते हैं।
अन्ततः किन्तु रज कण हैं लगते हैं झड़ जाते हैं॥
जिसने भी प्रेम सिखाया है प्रेम उसीसे करते।
उपहासास्पद घटना है करते-करते भी डरते॥
हैं एक-एकके कितने, हम दोनोंके साधक हैं।
निशिमें शशिवदनाओंके दिनमें ईश्वर जापक हैं॥
प्रतिद्वन्द्वीका लखते ही यह हृदय फटा जाता है।
वह प्रेम-पन्थगामी पद पृष्ठतः हटा जाता है॥
रमणीका उर कैसा है हो आर्द्र नहीं हिलता है।
सारे प्रस्तर गिरि देखे उपमेय नहीं मिलता है॥
निशिमें तो प्रेम नहीं था अब प्रेम हुआ निशि कब हो।
पर प्रेम न व्यर्थ रहेगा चाहे अब हो वा तब हो॥
मर जानेकी विधि कह दी मिल जानेकी विधि कह दे।
मिलकर भी मर जाना है, मरते-मरते कुछ कह दे॥
करुणाके पात्र अधिक हम होनेकी कब कहते हैं।
क्या यही कृपा कुछ कम है जो इस उर में रहते हैं॥
रुक-रुककर बूंदें आतीं वर्षाकी ऋतु जाती है।
सजनीके घर रजनीमें बरबस पहुँचा जाती है॥
हम अपनी प्रेम कथाका आरंभ आज कर देंगे।
निश्चय निष्फल होकर भी उसको दूषित कर देंगे॥
यद्यपि अब तक तो उसको है ध्यान न प्रेमिकताका।
पर कभी स्वयं होवेगा आनन्द उसे समताका॥

आवरण उन्हें प्यारा है इसका यह ही कारण है।
अबतक जिसने देखा है उसका ही हुआ मरण है॥
नयनोंसे नेत्र मिलाये उरसे भी हृदय मिलाया।
सब भाँति सुगम थी वह भी पर तृप्त नहीं हो पाया॥
उद्यान मिला पुष्पोंको यह हृदय तदर्थ खिला है।
तुमको भी हम-सा प्रेमी पुण्योंसे आज मिला है॥
काले मुँहपर भी लाली डाली खिड़की भी खोली।
मैं भी मुसकाकर बोला होनी ही थी यह होली॥
मुझको निकृष्ट कहकर ही उत्कृष्ट हुई जाती है।
पर उसे तृप्त करनेमें शान्ति-सी मुझे आती है॥
समझो इस प्रेम कथाका विवरण हम समझाते हैं।
अच्छे-अच्छे घर वाले कौड़ीमें बिक जाते हैं॥
तुमने तो प्रथम कहा था 'अब मैं मेरी तू तेरा'।
फिर क्यों वर्णन होता है पुरमें लुक-छिपकर मेरा॥
प्रेमिक रवि ऐसी कोमल कलिका क्यों झुलसाता है ?
क्या छेड़ यहाँ करने में आनंद अधिक आता है॥
यह रक्त बिन्दु करमें है पाखंड नहीं विरचा है।
उस वधिक मित्रका भी बस यह ही तो चिह्न बचा है॥
जबसे तुम विमुख हुई हो सब जग ही विमुख हुआ है।
उन्माद एक आश्रय था अब सो भी विमुख हुआ है॥
उसका दर्शन पानेसे मुखपर आभा आती है।
इस भाँति ताम्र सोनेको करने रमणी जाती है॥
इच्छा न इन्द्रसे कुछ है भय कब यमका करता हूँ ?
कर्तव्य प्रेम मेरा है इसको तजते डरता हूँ॥
बलिदान अन्यका लखकर मेरा कब बस चलता है।
यों मुझे जलाने देखो पहले दीपक जलता है॥
युग बीतेपर तो उसने अपना मुखचंद्र दिखाया।
हा निर्लज्जा लज्जाने छवि वंचित ही ठहराया॥
प्रेममें युगल जोड़ीकी देखें वह रजनी कब हो।
पहली कहती कल होगा दूसरा कहे बस अब हो॥
कल चुम्बन-मात्र किया था आदेश आज पाया है।
भीषण घटना-कारीको उन्मादी ठहराया है॥

यदि अन्धकारमें भी मैं अपनी तरुणीको पा लूँ।
तो अपना काम बना लूँ सब जगमें ज्योत जला लूँ॥
मठसे संन्यास दिखाये तो यों बोली मुसकाती।
विश्वस्त नहीं हो स्वामी अन्यथा यहाँ रह जाती॥
उसके प्रभावमें देखो मैं कभी नहीं आता हूँ।
इस जैसी तो लाखोंको मैं बेच-बेच खाता हूँ॥
हमको निरीह मत कहना हमने न तजी इच्छा है।
इच्छाको तजनेकी तो अबतक हमको इच्छा है॥
होना था वही हुवा है यह हमने जान लिया है।
अपराध भाग्यका ही है तुमने कुछ नहीं किया है॥
प्रच्छन्न रहेगा कैसे मम प्रेम नहीं बन आती।
अब वैद्य गणोंसे देखो है मेरा रोग बताती॥
जनताकी सेवा करना ईश्वरको अधिक सुहाता।
सौन्दर्य भक्तिसे तो वह सबको तुरन्त मिल जाता॥
चिन्तित चकोर तू क्यों है रजनीमें क्यों रोता है।
थोड़ी-सी शेष रही है दुखका सुख क्यों खोता है॥
जब तेरी सुधि आती थी हम आकुल हो जाते थे।
थे श्वास स्वयं रुक जाते यों योगी बन जाते थे॥
सच्चे प्रेमीका जगमें निश्चित तो स्थान नहीं है।
हेमन्त कहीं होता है पर चातुर्मास कहीं है॥
स्तुति-कर्ता स्तुत्य, विकल है वह हाथ नहीं आया है।
हमने भगको तजते ही भगवान् स्वयं पाया है॥
जब तक शब्दाडंबर है तब तक सद्ज्ञान कहाँ है?
अवगत जब तत्व हुवा तो इस जगका ध्यान कहाँ है?
जब तेरे उरका दर्पण निर्मल स्थित हो जावेगा।
आवरण रहे कितना भी पर सन्मुख हो जावेगा॥
नयनोंका यद्यपि तेरे देखना मात्र धंधा है।
फिर भी हम तो समझे हैं हे मित्र अभी अन्धा है॥
पानी पीकर बस चल दे प्रश्नोंकी क्या ठानी है।
मेरी वालीका जगमें कितना अनर्थ पानी है॥
स्मृत है सम्राट बनाकर ब्रह्माका मुझसे कहना।
करना चाहे मत करना हाँ किन्तु सदा चुप रहना॥

इस प्रेम पंथ यद्यपि जाने वाले जाते हैं।
हा हन्त ! किन्तु पहली ही चट्टीपर डर जाते हैं ॥
वह नहीं सुने तो कह दूँ है सत्य किन्तु डरता हूँ।
प्रेम्यसे अधिक देखो तो प्रेमसे प्रेम करता हूँ ॥
रोदन उसका सुन्दर है जो सुन्दर होकर रोवे।
वा जिसके नेत्र कमल हों वर्षा सम अश्रु भिगोवे ॥
रति शय्यापर भी मुझको इतना अवश्य खलता है।
यह दीप तुरन्त बुझा दो जो देख-देख जलता है ॥
तन बुदबुद तुल्य बना था बनते ही नष्ट हुआ है।
अनुपम रहनेवाला क्यों पर इसमें भ्रष्ट हुआ है ?
शिक्षक आवे तो आये पर किसको शिक्षा देगा।
यह प्रेमी दुर्वचनोंकी उसको भी शिक्षा देगा ॥
प्रोक्षण बन वारिद आया आँसूका नीर पिया है।
तब ही सब जगको इसने प्लावित वा तृप्त किया है ॥
मुग्धा बाला रजनीमें यदि कभी मान करती है।
तो अपनी हृत्तंत्री भी स्वरहीन गान करती है ॥
अन्तर्यामीकी सुधिमें यह बाह्य जगत पाया है।
इसको अनित्य लखकर भी यह मन क्यों ललचाया है ?
हैं धन्य पुष्प सारे ही आजीवन वे सुन्दर थे।
जब सूख गये तब भी वे भैषज्यवान् सुखकर थे ॥
प्रेमीकी मत कुछ पूछो वह क्या कैसे करता है।
यह बरसाती पानी है बिन मारे भी मरता है ॥
हँसते-हँसते आई थी रोता तजकर जाती है।
मुझ पुरुषश्रेष्ठको लखकर करुणा भी कब आती है ॥
जीवन सुखके कारण ही यह हृदय प्रदान किया था।
आजीवन फिर भी सुखसे मैंने वैराग्य लिया था ॥
प्रत्येक कष्ट सह डाला बस मृत्यु-कष्ट सहना है।
यह एक और सह लें तो फिर जगमें क्यों रहना है ॥
सुन्दरी गई है जबसे जीवनमें मोद नहीं है।
सुन्दरियोंका इच्छुक भी अब अपनी गोद नहीं है ॥
प्रति दिवस प्रेमिकाकी भी आज्ञा नूतन होती है।
बस इसीलिए वह अपना प्रेमी नित ही खोती है ॥

जो कहें स्वर्ण भारी है उनसे बस फिरा विधाता।
यह ही यदि भारी होता तो क्यों तनपर चढ़ जाता॥
नयनोंमें जिसे बसाया वह उतर नहीं सकती है।
जिसपर उन्माद चढ़ाया वह सँवर नहीं सकती है॥
हम करुणाके इच्छुक थे तू किन्तु निर्दयी निकली।
क्या गुण मुझमें देखे थे जो तीव्र गुणमयी निकली॥
हा व्यर्थ प्रार्थना मेरी उस तरुणीने ठुकरा दी।
मैं ब्रह्मलीन होता तो मिल जाते दो उन्मादी॥
जिसका है प्रेम निरन्तर वह बात नहीं कहता है।
मनसे स्मृत तो करता है ओठोंसे चुप रहता है॥
यौवन जबसे आया है तबसे मरता रहता हूँ।
हाँ मरण किन्तु यौवन है यह कभी नहीं कहता हूँ॥
यदि हृदय लिया है मेरा तो मुझको भी स्मृत रखना।
विस्मृति है प्रकृति तुम्हारी स्मृतिको भी किन्तु परखना॥
निद्रा न निशामें आती आनन्द न दिनमें आता।
मैं दिनमें सो जाता हूँ निशिमें आनन्द उड़ाता॥
जिसकी तुम प्रेम्य बनोगी वह कब किसकी मानेगा?
नौ चूल्होंकी प्रतिदिन ही वह राख प्रिये छानेगा॥
दर्शनका मैं इच्छुक हूँ तू कहता है सब होगा।
कबतक पट ढके रहेंगे कह भोग भला कब होगा?
है हृदय हुआ हृत जिनका उनको निद्रा कब आती।
करवट लेते-लेते ही रजनी व्यतीत हो जाती॥
सौन्दर्य द्रव्य भी क्या है सुधि लेते ही गिरते हैं।
कौतुकदर्शी भी कितने उनके पीछे फिरते हैं॥
आवरण रहा यदि रोचक तो जगमें क्यों आना था।
बिजली-सी तनिक चमककर नभमें ही छिप जाना था॥
गुरुओंसे प्रेम सुराका कब पात्र लिया जाता है?
इसको है कौन बनाता यह नित्य किया जाता है॥
अणुपर 'कणपर' जलनिधिपर सारे रीझे जाते हैं।
हम तो मध्यस्थ हुवे हैं रमणीपर बलि जाते हैं॥
सौन्दर्य देखकर ही मन सुन्दरियोंमें लय होगा।
ईश्वरसे जब निर्भय हैं तो जगका क्या भय होगा॥

लक्ष्मीकी क्यों निंदा हो वह स्वर्गोंकी चाभी है।
वह दीनबन्धुकी पत्नी हम दीनों की भाभी है।।
शिरपर का पापकलश क्यों इन बातोंसे भरते हो।
कुछ पीकर भी देखी है या निन्दा ही करते हो ?
उसके जानेसे घरमें मुझको एकान्त कहाँ है।
मन यद्यपि चला गया है पर उसका क्षोभ यहाँ है।।
यद्यपि अपने वचनों का पालन करने आते हैं।
उत्सुकता-उत्सुकतामें बारह ही बज जाते हैं।।
मेरे जैसा मद्यप भी क्या मदिरालय जाता है ?
गंगाजल भी पी लूँ तो मदिरा-सा मद छाता है।।
उपवास पाठकी ऋषि क्या चाहे चमार कह जायें।
नवरात्र बिना रमणीके बोलो कैसे रह जायें।।
जब दीर्घ निशा रहती थी तब अल्प मिलन होता था।
है मिलन दीर्घ लघु रजनी यह लखकर जग रोता था।।
आओ आलिंगन कर लें यों स्वीय विषाद मिटा लें।
अभिलाषाओंकी सीमा भी अपने आप घटा लें।।
सुन, हे वसन्तके प्रेमी हेमन्त चला आता है।
फिर भी तू इन पुष्पोंपर आसक्त रहा जाता है।।
यदि भाग्य सहायक होगा तो आप अभी आते हैं।
ऐसोंको कभी मनाने हम विज्ञ नहीं जाते हैं।।
माली यदि माला गूँथे पुष्पोंका भार न करना।
हो रंग तनिक हलके ही पंखड़ी मात्र ही भरना।।
हम भी अपनी कहते हैं कितने शिष्टाचारी हैं।
प्रत्येक सुन्दरी लखकर हो जाते बलिहारी हैं।।
पुष्पोंसे प्रेम किया तो माली भी रुष्ट हुआ है।
सन्तोष यही पाया है कंटक संतुष्ट हुआ है।।
वीणासे ही तो रति थी मृग कब सोया या जागा।
ज्यों ही वह बन्द हुई बस चौकड़ी मारकर भागा।।
आनंद तभी आता जब प्रेमिका रुष्ट हो जाये।
दीपक यदि शान्त रहे तो कैसे पतंग सुख पाये।।
चन्द्रिका कक्षमें मेरे लघुके प्रति होठ चलाये।
सिद्धान्त न मिलनेपर भी वह मनोरमा बुलवाये।।

वीरोंके वज्र हृदयको इतना कोमल कर डाला।
कामिनियोंका कोमल था सो उसे वज्र कर डाला॥
तुम सुरापान कर डालो प्याला चुम्बन पावेगा।
पीनेको तुम पीयोगे मद किन्तु मुझे आवेगा॥
बूंदों ही की इच्छा थी मिल गया सिंधु तो क्या है।
उच्छिष्ट नहीं पाया है इसकी जगमें चरचा है॥
जलनेकी कब इच्छा थी शीतलता कब पाता हूँ?
बस अग्नि-देवको जलता लखकर जलता जाता हूँ॥
दीपक पहले जलता है पीछे पतंग आता है।
प्रेमी हो ही जाते हैं जब यौवन आ जाता है॥
मैं तेरे योग्य नहीं हूँ सन्तोष किन्तु लख मेरा।
वासना, चाव, इच्छादिक कर ही डालेंगे तेरा॥
मेरे विस्तृत उरमें ही वस्तुतः ईश अँटता है।
आकाश आदि तत्वोंसे फिर भी बाहर रहता है॥
मद्यपका अब पीनेमें हृत्कमल नहीं खिलता है।
मदिरा तो मिल जाती है आनंद नहीं मिलता है॥
हो श्रवण न प्रेम कथाका नित प्रेम करो सुख पावो।
श्रोता तुम क्यों बनते हो बस कथा-कथ्य हो जावो॥
मुझको इसकी कब चिन्ता यह कब विचार होता है।
तुझपर प्रभाव अनुनयका होता कि नहीं होता है॥
मुझको इसकी इच्छा है जो है अप्राप्य कहलाता।
नश्वर है अभिलाषा तो मैं नाश नहीं कर पाता॥
मृगने तृण स्पर्श किया था आस्वादन कब कर पाया।
क्रोधित व्याधने बरबस क्यों उसपर बाण चलाया॥
इस प्रेम कथामें अद्भुत सत्काण्ड कभी होते हैं।
मेरे प्रतिद्वंद्वी देखो मेरे कारण रोते हैं॥
उस छोर प्रेम प्रतिमा है इस छोर हृदय नर्तक है।
मेरा जग इस सीमासे देखो उस सीमा तक है॥
आनंद रहा पीनेमें वा पान करानेमें है?
जीवनका सुख बोलो तो क्या आने-जानेमें है?
रूपेच्छु चक्षु मेरे हैं सौन्दर्य वहाँ विकसित है।
दोनों कारण उलटे हैं अब हृदय निधन निश्चित है॥

क्यों भेद बताऊँ तुमको उलटी विचारधारा है।
यह तेरा भेद मुझे तो तेरेसे भी प्यारा है।।
हैं कोटि हृदय न्योछावर वह स्वीय भवन भर लेवें।
उत्सुक जगसे कह देंगे आकर दर्शन कर लेवें।।
है दोष भाग्यका अपने वा उस ईश्वरकी माया।
हम जिस-जिसके प्रेमी थे वह प्रेम्य नहीं हो पाया।।
मत प्रणय प्रतिज्ञा करना क्रम भीषण हो जावेगा।
फिर प्रेम-याचना करने मम तुल्य नहीं आवेगा।।
क्षण-भरमें ही वह यौवन हमने व्यतीत पाया था।
अब समझे हैं यह केवल अपनाम हेतु आया था।।
प्रतिक्षण भगवच्चिन्तन हो लवमात्र न उसे भुलाये।
कर्तव्य भक्तका यह है जगको कौतुकी लखाये।।
मैंने ही प्रेम किया था है उसने मूल्य चुकाया।
जो ऋतु वसंतसे पहले वर्षामें ही बिसराया।।
नक्षत्रोंसे भी ऊँचे अगणित संसार बसे हैं।
हम इससे भी घबराते यह लख-लख देव हँसे हैं।।
तुझको विरक्तता भायी उपदेश मुझे भी दे दे।
अपरिग्रहके वैरागी मेरा मन मुझको दे दे।।
प्रार्थना विनययुत स्तुति तू प्रेमी कैसे करता है?
यह तो स्तुतिकी निंदा है स्तुति तत्व पृथक रहता है।।
वह मेरी कथा सुनायें निंदामें भी अमृत है।
मेरा पुराण जो है सो उसका भी तो भारत है।।
क्यों दृश्य देखकर द्रष्टा विक्षिप्त हुए जाते हैं।
क्यों नहीं दृष्टि द्रष्टाके सम्बन्धी हो पाते हैं।।
अज्ञान विनय करता है अब तक तो मुझे न माना।
यदि ज्ञान प्राप्त हो जावे तो भूल न मुझको जाना।।
आवरण तुझे तजनेमें यदि कुछ लज्जा आती है।
तो मन-मंदिरमें रह ले इसमें क्या घबराती है।।
संबंध तजा है सारा क्या अपना क्या अन्योंका।
जबसे तुझको चाहा है आनंद मिला धन्योंका।।
यदि तू ही आ पहुँची है तो जो चाहे सो कर ले।
बाले ले तुझे शपथ है मेरी पवित्रता हर ले।।

अन्ततः नयन से मनमें मनसे उरमें आई है।
तव तुल्य मूर्ति भी तेरी क्या चंचलता लाई है।।
गुणग्राहकता लखने को यद्यपि न कभी मचली है।
उरमें न अँटी भावुकता कविता हो वह निकली है।।
गृहके बाहर क्यों आये जा रहे कहाँ अकुलाये।
किसको है शेष रिझाना जो केशपाश सँवराये।।
जिसपर भी एक समय भी तव कृपादृष्टि हो जाये।
तो वह दरिद्र पल-भरमें सम्राट पूज्य हो जाये।।
जो दया न दीनोंपर हो वह दया नहीं कहलाती।
वह केवल अनुकम्पा है परलोक नहीं सुधराती।।
जगदीश मुझे वह बाला तजती अनर्थ होता है।
मेरा मन मेरी मतिपर हँस-हँसकर भी रोता है।।
सौन्दर्य चाहते सब हैं ज्ञानी मानी वा ध्यानी।
इतने ग्राहक लखकर ही सौन्दर्य हुआ अभिमानी।।
कोई कल प्रेम तरणिसे सौन्दर्य सिन्धुमें लय हो।
कहता था हाथ उठाकर इस प्रेम देवकी जय हो।।
यौवन, जीवन, धन-तन-मन उस प्रेम्य रूपपर खोया।
फिर प्रेम कथा गा-गाकर श्रोताओंका घर खोया।।
यदि मैं प्रेमी मर जाऊँ कैसे तुम प्रेम्य कहावो।
किसके घर प्रेम रहेगा कोई तो घर बतलावो।।
सोते प्रियतमका निशिमें पुष्पोंने सौरभ चोरा।
रविने यों किरण चुभाई वायुने यों झकझोरा।।
सौन्दर्य प्रेम ये दोनों ऊँचे नीचे सम भी हैं।
इस ही कारण देखो तो दोके ग्राहक हम भी हैं।।
भारत,[1] पुराण, रामायण, षटशास्त्र, वेद चारोंका।
समुचित निचोड़ यह ही है प्रेमी बन सुकुमारोंका।।
कर रहे इन्द्र अनुनय हैं सुर अमृत बिना कलपते।
जो प्रेमी और युवा हों वे प्रेम्य-अधरसे लेते।।
उसकी निन्दा ही क्यों हो मैं नष्ट स्वयं क्यों होऊँ ?
कुछ बस न चला मनपर है हा इसको कैसे रोऊँ।।

---

१. महाभारत।

मंगलाचरण तो स्मृत है इस प्रेम-पुराण कथाका।
भोलेभाले भावों से लखना मुझको बालाका॥
अभिमान प्रेम्यको देकर निज तेज तेज-सागरमें।
उन्माद आज भरवाया इतिहासोंके गागरमें॥
कथनीय शब्द तो वह है जो अक्षर हो अंकित हो।
सौन्दर्य ग्राह्य वह है जो नयनोंसे आलिंगित हो॥
इस प्रेम पाठशालामें उन्मत्त ज्ञान पाता है।
जितना दर्पण मोटा हो उतना प्रकाश लाता है॥
हे व्याध ! मुक्त कर दे अब यह ऋतु वसंत आती है।
तेरी कठोर छातीसे मेरी फटती छाती है॥
मतियुत मेरा हो जाना तेरी निन्दा करना है।
तेरे अतिरिक्त हृदयमें मुझको किसको भरना है॥
नभमंडलसे भी देखो अद्भुत भीषण रव आता।
मदमत्त इन्द्र भी मानों मद्यालयको ले जाता॥
कैलास लोकसे जो यह शीतल बयार आती है।
वह कामदेवके उरका स्पन्दन क्यों समझाती है॥
अस्तित्वहीन होकर मैं सत्ता स्थापित कर लूंगा।
इस भाँति प्रेमसागर से अपनी गागर भर लूंगा॥
कोकिल कंठोंके द्वारा जब प्रेम्य कथा सुन पाई।
तब कहीं प्रेम करनेकी इस ज्ञानीने ठहराई॥
विद्युत, शशि, रवि, तारोंपर दीपकपर अंगारोंपर।
मेरा प्रभुत्व नित ही है ज्योतिर्मय सुकुमारोंपर॥
जिसकी छविने था मुझको इतना उन्मत्त बनाया।
उसका ही नाम मुझे तो अब स्मरण नहीं करवाया॥
जीवनपर प्राण निछावर करना ही है कर देंगे।
भिक्षुक यमका झोला भी इस जीवनसे भर देंगे॥
नल रामनगर तजते थे मैंने वनको भी छोड़ा।
तब कहीं कठिनता द्वारा इच्छासे नाता तोड़ा॥
वह पुष्प बनो जो वनमें उद्यान बना देता है।
क्या हो वसन्तपर रीझे यह क्या किसको देता है ?
उन्माद शिखरपर था ही दुर्मति थी चँवर ढुलाती।
क्षण-मात्र न यदि तुम आते तो घोर प्रलय हो आती॥

वढ़ गई सुन्दरी जगमें सम्भवतः विश्व भरेगा।
भोले प्रेमी ! कुछ कह तो किस-किससे प्रेम करेगा ?
तुमपर ही करुणा करके होता कामाचारी हूँ।
वस्तुतः सुनो तो अब भी मैं पूर्ण ब्रह्मचारी हूँ॥
मदिरा न घूंट-भर पी है साहित्य न पढ़ पाया है।
रमणी न पास बैठाई कविता करने आया है॥
लो यजुर्वेद पढ़कर भी हृत्कमल नहीं खिलता है।
शतपथका ज्ञान मुझे है पथ एक नहीं मिलता है॥
भावोंकी इस सरिताको हाथोंसे ही तर डालूँ।
यदि आज दर्श हो जावै तो पौर्णमास कर डालूँ॥
हों शिव कुमार गंगाधर रामावतार भी होवैं।
तो ज्ञान सिन्धु लख मेरा प्रत्येक तीरपर रोवैं॥
ईश्वरको दोष न देना वह तो भोला-भाला है।
अन्याय हमींने सहकर अन्यायी कर डाला है॥
भिक्षा ही यदि लेनी है तो लो दाता भी देखो।
भिक्षा लेनेसे पहले दातासे नाता देखो॥
तरुणीसे ही मिलना है तो प्रेम छात्र ही हो जा।
मत कर्ता, कर्म, करण बन उपकरण-मात्र ही हो जा॥
रोते-रोते भी सज ले स्वामीके घर जाना है।
रोनेका रोना होगा बाले फिर कब आना है॥
जो कहते थे सब प्रेमी वह ही मैं भी कहता हूँ।
वे चुप रहकर सुनते थे मैं सुनकर चुप रहता हूँ॥
व्यापक हो वह कण-कणमें मैं तो खोजे जाऊँगा।
भय है न कहीं मिल जावे तो मैं खोया जाऊँगा॥
जितने प्रेमी देखे हैं सबसे परिचय पहिला है।
है साम्यवर्णमें इनके आश्रम ही नहीं लिमा है॥
साढ़े साती शनिसे भी पूछा यों डरते-डरते।
सौन्दर्य प्रेम कर लेता तो आप भला क्या करते॥
वर्षासे ज्यों सरितामें बालू चढ़ती जाती है।
यौवन ज्यों-ज्यों आता है शिशुता बढ़ती जाती है॥
वह करे बालहठ कर ले मैं कब उससे लड़ता हूँ।
मेरी तो बस शिशु हठ है बहुधा रो ही पड़ता हूँ॥

सर्वज्ञ हुवा भी मैं तो तेरी मयाके वश हूँ।
तेरी भ्रूभंगीका भी अपवाद नहीं अपयश हूँ॥
दुष्यन्त, राम, नल, अजाशिव, कृष्णादिककी भावुकता।
इतिहास-मात्र हैं अब तो स्तुत है मेरी प्रेमिकता॥
वह ही तो बस सब कुछ है शिव सत्य तथा सुन्दर भी।
सौन्दर्य बिना पत्थरका कैसे होता शंकर भी॥
गुरुतर अपराध भले हो गुरुको गुरु ही कहता हूँ।
मानवको मैं ईश्वर वा भगवान नहीं कहता हूँ॥
रुचिमें यौवन आता है आशा वृद्धा होती है।
रमणीके लखते ही बस मुझमें क्या-क्या होती है॥
क्या उसका भेद लखा है कुछ भेद न ले पाता हूँ।
कहने की भी इच्छा है पर चुप ही रह जाता हूँ॥
सोयेकी यह लीला है क्या होगा जब जागेगा।
रमणीको ले भागा है ईश्वरको ले भागेगा॥
यदि तेरा भवन तजूँगा तो भुवन-मात्र तज दूँगा।
अप्राप्य बनूँगा पीछे दुष्प्राप्य तुझे कर दूँगा॥
प्रत्येक पाठशालाकी शिक्षिका विनय सुन जावें।
स्वर-मात्र प्राप्त मुझको हों व्यंजन प्रतिद्वंद्वी पावें॥
उद्धव आनेको आये आकर जा भी सकते हैं।
ब्रजके बाहर इस ब्रजकी घटना न सुना सकते हैं॥
गृहत्याग विपिन जाता हूँ है गृह निर्मित हृदयमें।
रमणी वियोग होते ही कृति हो जाती है लयमें॥
सौन्दर्य रूप वैभवमें अनुरक्त चित्त यह जब था।
मदमत्त नहीं था, फिर भी मैं सावधान ही कब था?
वैतरणीकी सरिताको पी पेट स्वयं भर लेंगे।
जीकर ही नहीं किया कुछ तो मरकर क्या कर लेंगे॥
है अग्निहोत्रशाला वह जिस जगह हृदय जलता हो।
पद-चिह्न तीर्थ हैं पथमें जिस मग प्रेमी चलता हो॥
मत शुक्ल कृष्णकी पूछो प्रत्येक घड़ी रसकी है।
वह तो कपोल मेरा था यह केशराशि उसकी है॥
यह कहना तो मिथ्या है मदिरासे ही जीता हूँ।
देखो इस अग्निशिखाको पानी करके पीता हूँ॥

मैं उसको ले आऊँगा यह प्रीति सफल होवेगी।
प्रतिद्वन्द्वी जनता घरमें सिर दे-देकर रोवेगी॥
दीपकका प्रेमी भुनगा रविपर कैसे बलि जावे।
इस महत्प्रेम्यके कारण उर क्यों विस्तृत बनवावे ?
कब वेदमार्गसे मुझको तरुणीने कभी हटाया।
संबंध रखा अपना ही जगसे तो मुक्त कराया॥
इसने पाया ही क्या था जो अब खोये जाता है।
है लिखा भाग्यमें रोना बरबस रोये जाता है॥
मदिराकी शपथ न देना अन्यथा कुव्रत करता हूँ।
बस एक पात्र पीकरके सबको विस्मृत करता हूँ॥
प्रेमी विपत्तिमें हो तो प्रेमिका भाग जाती है।
जब धूप पुष्पपर आती तो कब चिड़िया आती है॥
ज्ञानी होकर भी स्वामी तुझसे पढ़ने आया है।
मानों कोई मतवाला मदिरा लेने आया है॥
निस्सीम रूप उसका है मेरा विचार सीमित है।
परिचय न उसे मेरा हो वह तो मुझसे परिचित है॥
ब्रह्मा तो वृद्ध हुए हैं शिवने समाधि धारी है।
हैं विष्णु योग निद्रामें स्वीयों स्वेच्छाचारी है॥
वैष्णवने निज मंदिरसे क्रोधित हो हमें निकाला।
विष्णुको हृदय मंदिरसे हमने हो मुदित निकाला॥
किस भाँति भार परिणयका कोमला वहन कर पाती।
जगमें बस मूर्ख हमी थे अब आज बुद्धि समझाती॥
वह मृत्युमयी भी बनकर आती है तो आ जावे।
अन्तिम यह ही इच्छा है· बस अपनी होकर आवे॥
क्यों घर खोता रोता है यों चिता मध्य सोता है।
जीवित होकर फिर सुन ले यों प्रेम नहीं होता है॥
वह ही न दृष्टिमें आई अन्यथा विश्व लखता हूँ।
अस्तित्व नहीं फल का है पर खंड-खंड चखता हूँ॥
ईश्वरको भजने वाले रमणीको गले लगा ले।
यह फिर न मिलेगी तुझको उसको चाहे जब पा ले॥
हे परिष्कारके पंडित तेरी भाषा बोधक है।
पर प्रेम सुरा मादितकी वाणी तुझसे रोचक है॥

सौन्दर्य हुआ बिकता हूँ प्रेमी बन ग्राहक होता।
हाँ आत्मबोधमें फिर भी मैं ही तो बाधक होता॥
कण-कणका मैं प्रेमी हूँ समझो कणाद[१] मैं ही हूँ।
स्वर लहरी क्यों मन भावे जब स्वयं नाद मैं ही हूँ॥
भैषज्य व्यर्थ जब निकली तब स्मरण तुम्हारा करके।
मर गया हाय जीकर भी जीते-जीते डर-डरके॥
उरछिद्र-ग्रथन कुल-त्यागन यदि कभी श्रवण कर पाते।
सुन्दर होनेकी इच्छा ये पुष्प न मनमें लाते॥
शत्रुवत् उन्हें लखता हूँ जो शतंजीव कहते हैं।
जो प्रेम कहीं कर बैठे वे कब जीवित रहते हैं ?
है भय न पतनका मुझको आशा न उच्चताकी है।
सम भी हूँ नहीं किसीके कैसी मेरी पदवी है॥
मत देख वेद क्या कहता वा क्या लिखता है सायण[२]।
श्रुति स्मृतिकी यह सम्मति है तू लक्ष्मी मैं नारायण॥
उत्थान - गर्व तुझको है पतनाभिमान मुझमें है।
हों मान ज्ञान तेरेमें पर एक ध्यान मुझमें है॥
वेदोंमें क्या खोजूँ मैं अस्तित्व बना कब मेरा।
अब भी तो कहीं नहीं हूँ जगने डाला क्यों घेरा॥
कोकिल कुपात्र कहती है कू-कू तो कह जाती है।
हा पात्र देखकर मुझ-सा वह चुपकी रह जाती है॥
पा लिया प्रेम्यको जिसने उससे जगवालो डरना।
'अब भी तू क्यों जीवित है' यह प्रश्न न उससे करना॥
मद्यप गुरु कर-कमलोंसे संहार-सुरा पी लेना।
मरकर इस भाँति, अमर हो निश्चय निज स्वर्ग कर लेना॥
यह सुरापात्र प्रस्तुत है बाला रमणी तन्मय है।
एकान्त कुंज सौरभ है अब भी क्या श्रुतिका भय है ?
अब हम वसन्त मादित हैं हेमन्त व्यतीत किया है।
भयसे निदाघके दृगमें वर्षाका चित्र लिया है॥
चातक पी-पी रटता है किस पी की सुधि लेता है।
क्या प्रेम सुधा पाने की हमको अनुमति देता है॥

१. कणाद ऋषि। २. वेद के भाष्यकार।

ऋत्विज कुछ सोम पिला दे हो जाय ज्ञान ही मुझको।
कंठार्द्र-मात्र होते ही मैं ब्रह्म कहूँगा तुझको॥
जबसे तुमको पाया है मैं कहीं न आता-जाता।
पहले तो सुन्दरियोंके पीछे ही था पड़ जाता॥
उद्यान तजा है जबसे तबसे ही सुन पाते हैं।
शुभ ऋतु वसंत आई है नित पुष्प नये आते हैं॥
अपराधी ही बनकरके करुणा-भिक्षुक जो होंगे।
इतना ही हमें बहुत है उसके समक्ष तो होंगे॥
सौंदर्य पक्षमें श्री है तो हमको भी क्या डर है।
इस प्रेम पक्षमें शिव है जो सत्य तथा सुन्दर है॥
हे चन्द्रदेव बोलो तो मैं कैसे तुम्हें निहारूँ।
जब किसी प्रेम्य सुन्दरके चरणोंपर तुमको वारूँ॥
ओंकार बड़ा सुन्दर था तेरे नामोच्चारण में।
आकार किन्तु लख दो हैं तेरे इस नारायण में॥
किस प्रेम सरोवर के तट अपनी मैं कुटी बनाऊँ।
जो नई-नई नित बाला नयनोंके सम्मुख पाऊँ॥
जिसने भी प्रेम किया है वह ही अबतक रोया है।
क्या वस्तु मिली है जिसपर जग-भरका सुख खोया है॥
दृगवानोंके कारण तो प्रभुने यह सृष्टि रचाई।
उरवानोंके प्रति केवल सौन्दर्य सुधा लहराई॥
संगीत सुरा सुंदरता चाहे कुछ भी मिल जावै।
जिससे अज्ञान भवनका वह कीर्ति स्तम्भ हिल जावै॥
घूँघट-पट खोल तनिक-सा तूने तो हमको लूटा।
इस भाँति सरलता द्वारा कौतुक दिखलाकर लूटा॥
विद्युतने गृहको फूंका आँधीने राख उड़ाई।
उरको प्रियतम ले भागे तस्करने कमली पाई॥
आनन्द मृत्युका क्या है यदि हम यह कभी बताते।
बलि, व्यास, परशुरामादिक सुनकर सत्वर मर जाते॥
जिस प्राण प्रियाके कारण हमने निन्दा करवाई।
उसने भी तज डाला है हा दैव! भाग्य दुखदाई॥
शिशु-जीवन धन्य हमारा जब ज्ञान सीख मन पावै।
इस प्रेम जगतमें यौवन हे ईश नहीं आ जावै॥

वह तो मुग्धा बाला है फिर प्रीति रीति क्या जाने।
उसकी तो बड़ी कृपा हो प्रति वर्ष एक भी माने॥
दीपक पर बनूँ पतंगा वीणापर मृग हो जाऊँ।
पुष्पोंका भँवरा हूँ ही प्रति रूप प्रेम कर पाऊँ॥
यह सोमपात्र अन्योंको ही क्यों अर्पण होता है।
मधु बाले मैं सोमप हूँ मादक कण-कण होता है॥
अन्तरमें अहि सदृश मैं उरमें हूँ प्रेम छिपाता।
हाँ किन्तु विरह का लोहा चिंगारी-सा चमकाता॥
विष खाकर मर जाना था पर प्रेम नहीं करना था।
हे हृदय किया वह तैंने जो कभी नहीं करना था॥
यदि हृदय दान करनेसे सब प्रेम मूल्य चुक जावे।
तो यह सस्ता सौदा है है कौन न जो ले पावे?
मत आओ, वचन न बोलो, मत पत्र लिखो, रिसियाओ।
मुझ प्रेमीकी भी तो कुछ सन्तोष वृत्ति लख पाओ॥
यह भार कृपाका जगमें सद्वैद्य नहीं लेता है।
वह रोगी मर जाता है जो धन्यवाद देता है॥
रोना भी है, हँसना भी, जीना भी है, मरना भी।
यह विधि - निषेधका झगड़ा तजना भी है करना भी॥
मुझको यह ध्यान नहीं था मैं तुझसे प्रेम करूँगा।
जीवन - पथके पद - पदपर यों प्रणय - प्रपंच वरूँगा॥
यह जग अनित्य है इसमें किसकी अबतक बन पाई।
मैंने तो बनी बिगाड़ी मेरी इच्छा भरपाई॥
विक्षिप्त सत्यमें मैं हूँ ऋत में विक्षिप्त नहीं हूँ।
अपनी इच्छासे बंदी हूँ जगमें लिप्त नहीं हूँ॥
हम प्रेम तत्वको खोजें ऐसी तो चाह नहीं है।
मरकर जीना फिर मरना अपना कर्तव्य यही है॥
दुर्भाग्य हमारा है वा तव क्रोध दृष्टि हे सजनी।
दिन तो व्यतीत भी कर लें पर नहीं बीतती रजनी॥
कैसे कैसे भावोंसे वह निज चरित्र दिखलाती।
जो काम - शास्त्र ज्ञाताकी भी मति उलटी हो जाती॥
वह स्वयं मूर्त होनेको सदियोंसे ही उत्सुक है।
पर उसे देखने वाला कोई न रहा दर्शक है॥

पर व्यर्थ हटाया तुमने यह ज्ञान प्रथम करना था।
सामर्थ्य विनयकी देकर मतिका वैभव हरना था॥
अपना ही पता नहीं है क्या तेरा पता लगाऊँ।
अच्छा हो प्रथम यही बस शुभ द्वैत परीक्षक लाऊँ॥
प्रार्थना करें तो किससे घटनाएँ किसे सुनाऊँ?
दोषारोपण किसपर हो वा कैसे हूक उठाऊँ?
सौन्दर्यमयी प्रतिमा वह हा हन्त! स्वर्ग जाती है।
उसका प्रेमी बननेकी मनमें यमके आती है॥
वह अर्धरात्रि अँधियारी तव चिकुर कराते स्मृत हैं।
मध्याह्न कपोलोंको लख सब दर्शन, शास्त्र चकित हैं॥
तेरी इच्छा करनेमें मैं तुझमें खो जाऊँगा।
तैंने यदि मुझे जगाया तो तुझमें सो जाऊँगा॥
मुझपर प्रसन्न यदि तुम हो तो इच्छा स्वीय बताऊँ।
लज्जा दासी हट जावे एकान्त प्रणय कर पाऊँ॥
रोदनसे रुष्ट रहें वे हम हाय नहीं कर पायें।
मानों उनकी इच्छा है हम घुट-घुट कर मर जायें॥
सौन्दर्य प्रेमका मनमें यदि अतिथि मेरा हो जावे।
तो निविड़ शुष्क स्थल में ही मानों वसंत छा जावे॥
वैकुण्ठ स्वर्ग सुर अमृत अप्सरा किन्नरी पाऊँ।
तो प्रेम्यपाद-पद्मोंपर सबको अर्पण कर जाऊँ॥
सौदर्य-सुधा लुटती है याज्ञिको, सोमपो आवो।
यदि नहीं सुरा मदमादित तो लो घर भी ले जावो॥
जिसको चारों वेदोंने नित 'नेति नेति'[1] कह गाया।
मैंने तो उस निर्गुणको प्रेयसी रूपमें पाया॥
अब रोग-कथा न कहूँगा मैंने समुचित भोगी है।
प्रत्येक वैद्य सुन उसका प्रेमी एवं रोगी है॥
हृदयोंके हर लेनेको अपने पदसे गिरती है।
कितनी प्रवीण बाला है सुकुमार बनी फिरती है॥
वाहकके ही सन्मुख क्यों कह मेरा पत्र जलाया।
तुझको ही अग्नि-शिखा लख मैंने तो था भिजवाया॥

---

१. यह भी नहीं, यह भी नहीं, अर्थात् ब्रह्म का स्वरूप अवर्णनीय है।

कितनी भी वह सुन्दर हो बाला बाला रहती है।
हा हन्त देखो तो मुझको बालक कहती है॥
इस सूक्ष्म दृष्टिसे देखो संसार सूक्ष्म रहता है।
मानों प्रेमीका उर है विस्तृत होते डरता है॥
इस प्रेम औषधालयका यमराज रहे रखवाला।
यद्यपि तुम वैद्य बने हो पर कितनों ही को मारा॥
इस एक मूर्तिके कारण अक्षर भी मूर्त हुआ है।
अन्यथा जगतकी रचना में कारण कौन हुआ है॥
मैं प्रेम्य गरलसे मृत हूँ मुझको मृत ही रहने दो।
आनन्द मृत्युका पाया जीवन दुख मत सहने दो॥
अबतक अबोध बालक हूँ हाँ हृदय मुझे खोता है।
यदि हृदय किसीपर रीझे तो क्या करना होता है॥
मनको गुरुदेव बनाकर मैं शिष्य नष्ट होता हूँ।
है स्नातक हृदय उन्हींका दोनोंको अब रोता हूँ॥
मन-बुद्धि-चित्त उसमें है है अहंकार ही मेरा।
यह भी यदि मैं दे देता तो होता प्रेमित मेरा॥
इस वज्र हृदयपर मेरे कब नयन विशिख लगते हैं।
भ्रू-धनुधारी लाखों ही मम वेश देख भगते हैं॥
आक्रमण करे मुझपर जो ऐसा सौन्दर्य कहाँ है।
यह मनकी दुर्बलता ही बतलाती यहाँ वहाँ है॥
मैं वह कोमल किसलय हूँ जो झड़ता-झड़ता बढ़ता।
काँटा हो कभी न चुभता हो पुष्प, न सिर पर चढ़ता॥
यौवनकी वह गाथाएँ जो स्मृतिने आज बताईं।
मेरे संन्यासी मनको विश्वस्त नहीं हो पाईं॥
कुछ कहनेकी इच्छा है आज्ञा हो तो कह डालूँ।
वह कृत्य कौन है जिससे प्रियतम तुझको मैं पा लूँ॥
तेरे समक्ष इतना भी कहने में हम डरते हैं।
श्रद्धा तुझमें रखते हैं विश्वास नहीं करते हैं॥
हो दास विनय करते हैं पर कभी न अनुगामी हैं।
तेरे हों वा अन्योंके कहनेको तो स्वामी हैं॥
बाला भी एक न पाई मैं कितना भाग्य पतित हूँ।
स्वामी सब स्त्री कहती हैं पर अबतक अविवाहित हूँ॥

प्रेमिकता प्रेम कहाँ अब दर्शकगण हैं लख पाए।
मनके विरुद्ध होते ही उड़ गये पंख फैलाए॥
विधि स्वयं प्रेरणा करती मेरा निषेध कर डालो।
इस शिशिर समयमें रमणी जैसे-तैसे भी पा लो॥
इन अधर ओष्ठमें तेरी जिह्वा जगको न सुहाई।
ले अपनी जिह्वा रख दूँ होने दे विश्व हँसाई॥
हैं चुम्ब्य कपोल तुम्हारे अधरोष्ठ मेरे चुम्बक हैं।
तो फिर विचारना ही क्या अब क्यों विचार बाधक हैं ?
यदि कोई ईश्वर हो तो हे मित्रो उसे सुनाना।
नयनोंसे इन नयनोंको हे ईश कभी न मिलाना॥
उसके आश्रम जाते ही लज्जा मुझको तजती है।
रति में तृतीय-सी बाधक वह कभी नहीं रहती है॥
भूली घटना स्मृत होती वह यौवन रुचिमय परिणय।
अब हाय श्राद्ध करता हूँ दोनोंका विस्मृत अभिनय॥
भक्तोंकी विनय सफल की समझे न जाने कारणको।
भगवान स्वयं उत्सुक थे मानव शरीर धारणको॥
हम भीष्म तुल्य हठ करके उनकी न प्रतिज्ञा तोड़ें।
वह प्रीति दूर करते हैं तो हम ही फिर क्यों जोड़ें॥
मेरे रोनेपर मत हँस उन्मत्त जान मत मुझको।
यह तो मेरे कौतुक हैं किस भाँति बाँध लूँ तुझको॥
कैसे निज पीर छिपाऊँ नयनार्द्र कहाँ मैं जाऊँ।
इस प्रेम जगतसे बाहर किस भाँति निकल मैं पाऊँ॥
थोड़ा-सा भ्रष्ट मुझे कर कुछ ध्वंस किया फिर छोड़ा।
जाने क्या उसकी रुचि थी कुछ-कुछ करके मुँह मोड़ा॥
अपनी इस गुप्त कथाका हमने पुराण बनवाया।
पत्रों से संवादों से मठ-मंदिरमें सुनवाया॥
कोई उन्मत्त हृदय कल निशिको एकज बकता था।
हाँ चन्द्रमुखी की स्मृति में नक्षत्रोंको तकता था॥
शशि-प्रभा, लालिमा रविकी गाम्भीर्य सिन्धुका देखो।
तीनोंका चित्र-समन्वय मम प्रेम वदनमें पेखो॥
सब कुछ उनपर अर्पण है वह तनिक प्रगट हो जाए।
फिर तो अपनी रुचि यह है हम उनमें ही खो जाएँ॥

एकान्त वास ही तेरा एकान्त बताता जगको।
फिर द्वैत, त्वैत क्या खोजें अद्वैतवादके मगको ।।
कंघी सिरपर चढ़ती है दर्पण आगे आता है।
सौन्दर्य स्वयं नत होता जब यौवन आ जाता है ।।
दण्डवत क्रिया स्मृत मुझको चिन्ता केवल इतनी है।
तव चरणोंकी रज जगमें किस हेतु कहाँ कितनी है ।।
अनुमान करे सुन्दरता है ज्ञान प्रेमको आता।
सामान्य बुद्धि यह ख्यातित यह मति विशिष्ट कहलाता ।।
ले विरह गानकी तानें जगको करुणामय कर दे।
दुखका संगीत सुनाकर सुन्दरताका मन भर दे ।।
आकाश स्वयं बनकर मैं निज मार्ग खोज डालूँगा।
वा मार्ग ध्वंस करके फिर घरमें उसको पा लूँगा ।।
यों पुष्प वाटिकाओंसे सौन्दर्य सरित बहता है।
पर इन सुकुमारोंका तो जीवन दो दिन रहता है ।।
प्रेमने तपस्या करके हम-सा प्रेमी पाया था।
श्रोता, दर्शकगणपर भी अपना प्रभाव छाया था ।।
शिव शक्ति हुए हम दोनों फिर भी कैसी माया है।
वह विलग गई क्यों मुझसे कुछ भेद नहीं पाया है ।।
अस्तित्व रोग पीड़ाका सुखसे हम तो सह लेते।
अबतो पीड़ा यह ही है वह वैद्य हुए दुख देते ।।
इस प्रेम कोपको देखो यह प्रीति आज हरती है।
उसका अस्तित्व मिटाकर सत्ता स्थापित करती है ।।
पंकज गज हरि सरवर गिरि पल्लव कपोत पिक शुक झख।
वायस खंजन धनु शशि अहि पर सूर समान स्वमति रख ।।
मंदिरमें चन्दन चुपड़ा मठमें कर्पूर जलाया।
गंगामें गोते मारे पर ध्येय नहीं लख पाया ।।
अपने समक्ष अपना ही प्रतिबिम्ब देखनेवाले।
भीतर भी दृष्टि घुमा तो फिर टले न तेरे टाले ।।
अर्धोपदेश देकर ही वनमें ऋषियोंने छोड़ा।
मैंने अपने ही बलसे भव-रज्जु जालको तोड़ा ।।
मनमें इतनी चंचलता यह प्रेम राग भी उरमें।
यौवनसे प्रथम नहीं था वनमें नगरीमें घरमें ।।

जब शशि - किरणोंके तारों पर हों मेघोकी तानें।
किस कारण स्मृत होते हों भगवान भेदको जानें॥
रूपेच्छु चक्षुओंका भी तुमने प्रभाव लख पाया है।
आवरण सहस्रों ही थे पर मैंने तो देखा है॥
कल रात कुमुम शय्यापर सब पुष्प मुदित लख पाये।
प्रियतमा चकित हो बोली लख मुझको पुष्प लजाये॥
है स्पष्ट निमंत्रण मेरा प्रत्यक्ष घोषणा मेरी।
कोई गर्वीला सुन्दर हर ले पवित्रता मेरी॥
जग-भरमें वृन्दावन हैं पर नेत्र सतृष्ण नहीं है।
राधा अब भी अगणित हैं हाँ कोई कृष्ण नहीं है॥
नित शलभ दाह होता है जलना उनका जलवाता।
हो वायु धन्य तुमको ही यदि दीप बुझाया जाता॥
सर्वगत प्रेम्य तेरा भी कुछ भेद नहीं है पाया।
किसका तू हो जाता है किसका हो जाय पराया॥
अनुगामी इस बालाको लख तेरी मति रोवेगी।
कल उसकी थी अब मेरी कलको तेरी होवेगी॥
मेरी तेरी तुलना क्या कब प्रभु समक्ष अनुचर है।
तेरा चाहे जग होवे मेरा स्वामी ईश्वर है॥
ले-देकर मन मंदिरमें इच्छाका दीप जलाया।
तैंने अपने आँचलसे उसको ही व्यर्थ बुझाया॥
बन्दीगणसे मिल-मिलकर मैं अपना सिर धुनता हूँ।
कारण इनसे पहले ही निज मुक्ति आज सुनता हूँ॥
प्रेमी संन्यासी मत हो सौन्दर्य स्वीय मँगवाले।
कोई इस वनमें तुझको उन्मत्त नहीं कर डाले॥
सान्त्वना हेतु प्रतिदिन ही आता सुखकर दुखहर है।
तेरेसे तेरा चिन्तन तेरे समक्ष वरतर है॥
मृग फँसता, भँवरा घुटता चातककी घोर व्यथा।
तीनोंका घोर समन्वय देखो मम प्रेम कथा॥
हा-हा कर विरह निशामें कब उसे बुलाता मैं हूँ।
सो रहा भाग्य था मेरा सो उसे जगाता मैं हूँ॥
राधा माधवसे बढ़कर हम तुमने प्रेम किया है।
द्वारका-गमन अभिनयके करनेका नेम लिया है॥

निज अश्रुधारमें भी मैं खोजता शक्ति फिरता हूँ।
जलमें प्रवाह विद्युतका सुनकर पद-पद गिरता हूँ।।
माली अब तो प्रस्थित है माने तो अनुनय कर लें।
आज्ञा दे तो कुंजोंमें हम तनिक भ्रमण फिर कर लें।।
व्यर्थ थी विनय औरोंसे निष्कारण ही रोना था।
हमसे तुम तुमसे हम हैं अब विलग यही होना था।।
साकार विभूति बनी है उस निराकारके कारण।
बालाओंको तकता हूँ मैं ब्रह्म प्राप्तिके कारण।।
है प्रेम रोग भी ऐसा जिसका उपचार नहीं है।
अन्याय प्रेम्य करते हैं कोई प्रतिकार नहीं है।।
मनको सौन्दर्य सरितमें विद्वानो नहीं डुवाना।
करना न प्रेम वसुधापर वैसे चाहे मर जाना।।
प्रेमकी रुचि कब आती आकर आ ही जाती है।
फिर प्रलय काल तक भी वह हो अमर, नहीं जाती है।।
जिसपर हम बलि जाते थे वह हुआ न हाय हमारा।
इस भाँति भाग्यको लखकर हमने उसको धिक्कारा।।
तेरी रुचि जब मुझमें हो तबही मदमत्त बना दे।
मेरी रुचि जब तुझमें हो मुझको उन्मत्त बना दे।।
संसारोंसे अकुलाकर एकान्त स्थान खोजूंगा।
या तो उजाड़ दूँ इनको या मैं निजको भेजूंगा।।
पर्याप्त रुदन था फिर भी कर सके न रैनबसेरा।
किससे पूछें किस कारण, हो पाया नहीं सबेरा।।
परदेसी हूँ व्याकुल हूँ नैराश्य पूर्ण रोगी हूँ।
हूँ गेह रहित फिर निर्धन देखो पूरन योगी हूँ।।
इक दृष्टि-मात्रसे अपनी सन्तोष तृप्ति नसती है।
हा आँख नष्ट करती है फँसवाकर के फँसती है।।
मेरे जीवनका प्रियतम कोई भी प्रश्न न करना।
जब स्वयं तुम्हीं उत्तर हो उन्माद भाव मत करना।।
सित तुंग हिमालयका है नीला आकाश सुहाता।
मैं एक किन्तु डरता हूँ क्यों द्वैत नहीं कर पाता।।
तेरा सौन्दर्य लखा था शैशवमें तेरे घरमें।
शिव विष्णु देव पत्थर हो घुस बैठे हैं मंदिरमें।।

मति, शान्ति, बुद्धि, रुचि गत हैं जीवन, धन, मान गया है।
सीताके जाते ही बस मिथिलामें कौन रहा है॥
सहयोगी हमको सुधि है जव अपना मन आया था।
वरबस उसको उर देकर जव प्राणमूल्य पाया था॥
तेरे समान कहलाने वाला मैं जग में कैसे पाऊँ।
दे धन्यवाद तो तेरे सन्मुख दर्पण ले आऊँ॥
वाले मनका शासक बन वा मनसे शासित होजा।
यदि विश्व विजय करनी है तो स्वयं पराजित होजा॥
दर्शनकी उत्कंठामें निज नेत्र ज्योति खो डाली।
प्रत्येक हृदयकी जगमें कालिमा अतः धो डाली॥
उसकी सौन्दर्य-प्रभासे ऐसा प्रभाव पड़ता है।
तन कहीं मुझे ले जाता मन जानेको लड़ता है॥
अपने समान मुझको भी वाले, स्वच्छन्द बना दे।
तेरा बालात्व तभी है मुझको उन्मत्त बना दे॥
रुचि व्यर्थ न शेष रही है प्रेमी गणकी शालामें।
कारण भी विश्व प्रगट है यौवन आया बालामें॥
नयनोंने जिह्वा बनकर अब कथा उसे कह डाली।
इस भाँति मूकतासे भी हमने निज विपत्ति वचाली॥
क्यों प्रेम नगरके ऊपर अब अन्धकार छाता है।
क्या प्रेम्य सूर्य किरणोंसे तम नष्ट न हो पाता है?
ताण्डव - रत शंकर सम ही मम गेह कोई आता है।
अब विश्व प्रलय होवेगी जगका जीवन जाता है॥
है रोग घृणा करना भी ऐसा रोगी मत बनना।
यदि रुचे न कृति उसकी तो मनही मन शिरको धुनना॥
निर्मोहीका मुझको भी क्यों व्यर्थ मोह होता है।
उसको जीवन देता हूँ जो जीवन धन खोता है॥
केवल इतनी इच्छा थी यदि कभी पूर्ण कर पाते।
पुष्पोंके सन्मुख तुझको करके हम उन्हें चिढ़ाते॥
हमने भी अपने मनको श्रीयुत सा दण्ड दिया है।
बालाओंका प्रेमी बन ऐसा आदेश किया है॥
अब सूक्ष्म दृष्टिसे मुझको सारा संसार लखेगा।
तू स्थूल बना रह प्रियतम तेरा स्थूलत्व निभेगा॥

सृष्टिके प्रथम दिनसे ही मैं था सौन्दर्योपासक।
यह चिन्ता कभी न की थी कृति साधक थी या बाधक ।।
वृन्दावनकी गलियोंमें वास्तविक ज्योति लखता हूँ।
यों तो मैं प्रति सुन्दरको ईश्वर-ईश्वर कहता हूँ ।।
कहने वाले कह-कहकर अपनी-अपनी कहते हैं।
सुनने वालोंके सन्मुख वह किन्तु मौन रहते हैं ।।
तेरी स्मृतिमें सब जगको विस्मृत करता जाता हूँ।
विस्मृति-कारिणी क्या तेरी स्मृतिमें भी मैं आता हूँ ?
तेरे अतिरिक्त हृदय में क्या होता, व्यर्थ टटोला।
इस भाँति संशयी होकर अब क्यों बनता है भोला ।।
जब ऋतंभरा प्रज्ञासे मैं अपने नेत्र उठाता।
तो अणु-अणुमें व्यापक मैं भासित हूँ तत्क्षण पाता ।।
जब हृदय रक्त आँसूमें हमको प्रतीत होता है।
तब पूर्ण हृदयसे रोदन करना सत्वर होता है ।।
अप्सरे सुराके घटको क्यों है स्तन तुल्य दुराती।
मेरे पीनेकी मदिरा है स्वयं स्वर्गसे आती ।।
करुणामय गीतोंको भी उमड़ाता स्वयं जलद है।
जब हृदय-देश-वासीका सूखा होता दृग नद है ।।
तेरी तटस्थता ही तो मेरा दुर्भाग्य बनी है।
जो इच्छा हो सो तू कर मेरी भी कहीं छनी है ।।
जो पीर हृदयमें स्थित थी वह अब इन नयनोंमें है।
परिवर्तित रूप हुआ है अणु-अणु थी बूंदोंमें है ।।
इच्छुक नयनोंकी जगमें अपमान नहीं हो पाए।
हे प्रेमी तुझे शपथ है यह अतिथि न कोरा जाए ।।
लो प्रेम्य और प्रेमीका समकथन तुल्य आया है।
उसने पाकर खोया था इसने खोकर पाया है ।।
सौन्दर्य सूत्र रट-रटकर मनकी यह दशा हुई है।
वेदान्त, न्यायादिकोंकी श्रद्धा रुचि नष्ट हुई है ।।
प्रियतमे ! पत्रमें तेरे अन्तिम प्रणाम किसका था।
हस्ताक्षर तो तेरे थे हाँ किन्तु नाम किसका था ?
मस्तिष्क हृदयपर मनपर वह तो छाये जाते हैं।
वस्तुतः आत्म ही वे हैं पद पर आये जाते हैं ।।

लंकाके तुल्य हृदय तो अब तक जलता जाता है।
हनुमान पाश गत होगा लो मेघनाद आता है॥
दीपककी यह शिक्षा है जल-जलकर सब मर आवो।
जलकर पतंग कहते हैं प्रेति कार्य शीघ्र कर जावो॥
इच्छाकी हत्या करना क्या है कैसे होता है।
जा पूछ प्रेम्यसे प्रेमी तू क्या बैठा रोता है॥
अणु-अणु मेरा रिपु अब है फिर भी मैं उन्मादी हूँ।
चैतन्य तत्वकी कृति लख मैं कोरा अणुवादी हूँ॥
हे प्रेम्य ! अन्यका चिन्तन मेरेसे हटवा देना।
कुछ और न दीखे, चाहे अपना दर्शन मत देना॥
वृद्धावस्थामें भी जो यौवनकी छटा दिखाती।
यह प्रेम सुराका मद है किसको न युवा कर पाती॥
मालीसे अनुनय की थी 'मत तोड़' पुष्प मेरा है।
अब यही प्रश्न है उससे तोड़ेसे क्या तेरा है॥
ओषधिका अपयश लखकर कल तेरा नाम जपा था।
ज्वर हुआ और भी घातक तन उरके साथ तपा था॥
मतवारे नयनोंसे वह जाने क्या रहे पिलाते।
मैं अबतक मत्त रहा हूँ लख सका न आते जाते॥
वह समय गया जब कहता था मैं स्तुतका अंशी हूँ।
अब तो मेरी ही स्तुतिकी टूटी - फूटी वंशी हूँ॥
हम काम-पीड़ितोंकी तो बस यह संक्षिप्त कथा है।
करना अपवर्ग हमारा होना नारकी व्यथा है॥
शिवके ताण्डवके सम ही उसका भी पग उठता है।
दो पैर-मात्र चलनेसे बस सृष्टि प्रलय होता है॥
वह वैद्य प्रेम रोगोंका विक्षिप्त हुआ जाता है।
जितने रोगी सुलझाता उतना उलझा जाता है॥
किसकी चितवनने कितना क्या काम किया वा कैसे।
यदि पूछो मैं बतलाऊँ ऐसे ऐसे अरु ऐसे॥
वर्षा वाला मदिरा बन मैं आज कौल होऊँगा।
कल भाग्य-चक्र उलटा तो विद्वान श्रौत होऊँगा॥
उनकी बस एक प्रकृतिसे हम तो संतुष्ट नहीं हैं।
ऐसे मिलते हैं मानों किंचित् भी रुष्ट नहीं हैं॥

सम्राट रूप के तुम हो मैं प्रेम पंथ योगी हूँ।
पदमें समान दोनों थे मैं किन्तु विरह-रोगी हूँ॥
दे हृदय लिया चिन्ताको मेरा वाणिज्य न पूछो।
निर्बलता और प्रबलता मेरी उसकी मत पूछो॥
मैं तो कितने क्षणका हूँ मेरा जीवन मत पेखो।
इस सुन्दरता का ग्राहक जाओ इक प्रेमी देखो॥
पथ-पीड़ा पथान्त सुखका मुझको तो ज्ञान नहीं है।
वस्तुतः सत्य पूछो तो मेरा भी भान नहीं है॥
उन्माद सघन वनका वा नागरिक नियमकी स्मृतियाँ।
मैं तो सब खो बैठा हूँ अवलोको मेरी कृतियाँ॥
प्रति कण प्रत्येक दिशा में तेरा ही भान हुआ है।
यह दिव्य दृष्टि मेरी है वा तू गुणवान हुआ है॥
यह प्रेम कथा उर क्रन्दन किस स्थान नहीं होते हैं।
हाँ एक बात कहनी है सब प्रकट नहीं होते हैं॥
अन्तिम सीमा रुचिकी है जो प्रेमीकी इच्छा है।
श्वासोंसे ध्वनि जाती है जो हो जाये अच्छा है॥
मैं हृदय वैद्य बन बैठा लो प्रेम प्रमाण दिखा दूँ।
यदि कुलिश हृदय भी हो तो मैं उसको सरस बना दूँ॥
नामोच्चारण ही तेरा मेरा अस्तित्व बनाता।
घनघोर घटामें मानों यह चन्द्र प्रकाश दिखाता॥
सम्बन्ध स्वीयका परका प्रियतमे ! नसाया तूने।
मदमत्त रूप मदिरासे मुझको बनवाया तूने॥
स्तन केश कपोलोंको लख यह प्रकरण स्मृत हो आया।
वासुकि सुमेरुने मानों मथ सिन्धु, चन्द्रको पाया॥
अनुवाद प्रेमका मृत है इसमें जीवन मत देखो।
जिसने अथ की, वह इति है उसको केवल रत देखो॥
मतिपर उन्माद चढ़ाकर यौवन दर्शन करता हूँ।
इतना ज्ञानी होकर भी सौन्दर्य हेतु मरता हूँ॥
बाले ! किसने दे डाला तू भला कहाँसे लाई।
यह प्रेम सुरा का प्याला पीकर किसको मति आई॥
दो दिनमें ही यौवनका सुंदर दीपक बुझता है।
फिर भी यह अमर पतंगा क्यों इसपर जल मरता है॥

अनुरोध प्रार्थना क्यों हो दोषारोपण किसपर हो।
अवशिष्ट न रहता कोई यदि कहीं प्रेम सुन्दर हो॥
तेरे उलाहनोंसे तो वह काल नहीं आता है।
हाँ देख शापसे मेरे यौवन बीता जाता है॥
वह दिन भी स्मृत है मुझको बातोंमें रात विताई।
यह रात आज की क्या है कुछ बात न मन में आई॥
इच्छा है अब हम उनको अपने समक्ष ही देखें।
मानो जाग्रत नयनोंसे हम स्वप्न जगतको देखें॥
पहले तो तुमने मुँहसे मुझको प्रेमी बतलाया।
अब किन्तु मौन होकरके दुष्ख्यात मुझे करवाया॥
जो रुष्ट हुई थी उस ही बालासे प्रीति लगी है।
फिरसे मनके मंदिरमें तमनाशक ज्योति जगी है॥
है ऐसा लक्ष्य बनाया जो दूर समीप बसा है।
हा किन्तु मार्गमें मुझको सर्प-सा सदैव डसा है॥
मनको प्रसन्न करता था मैं योग बताकर जिसको।
अब आँख खुली तो समझा निश्चित वियोग ही इसको॥
वास्तविक ज्ञान शब्दोंसे कब प्रिये प्रकट होता है।
आ नयन-मार्गसे उरमें क्या बचनों से होता है॥
अनुरोध व्यर्थ क्यों ? मुझमें जब नहीं रूप वा यौवन।
उसने उपेक्ष्य कर डाला कारण है मेरा तन-मन ?
केवल इतनी इच्छा है हम ख्याति-मात्र पा जावैं।
प्रेमी गणकी गणनामें जैसे तैसे आजावैं॥
प्रतिदिन नवीनता लखकर बस काल तुझे जाना था।
जगसे कुछ अकुलाकर ही तेरा कहना माना था॥
तरुणियो ! आज सब सुन लो अब हम जगसे जायेंगे।
यदि मोक्ष न तुमसे पाया तो शय्यापर आयेंगे॥
जब विरह रुदन करवाया अब प्रेमगान गाने दो।
बैठो, सोओ, यह घर है घर जाने दो, जाने दो॥
रमणी क्या हैं पत्थर हैं दे हृदय मूल्य उठवा लो।
मन्दिरमें वा मरघट में जी चाहे जहाँ जड़ा लो॥
मदिरा पीनेवालोंको जग-चिन्ता कब भटकाती।
दो बूंद जहाँ मिल जातीं सृष्टिको सिन्धु करवाती॥

छवि - जाल वधिक रमणी है हम इसको लख हँसते हैं।
बस शरभ गरुड़को तजकर पक्षी सारे फँसते हैं॥
है चित्र चित्रकारोंने वैसे यह चित्र बनाया।
उस चंचलने अपनेको किस क्षण यों अचल कराया॥
सुन्दरियोंका प्रेमी भी सुन्दर हो तो सुन्दर है।
अन्यथा उक्ति वह होगी हरिणीका पति बन्दर है॥
कर नयन प्रणामानन्तर नीचे ही रहे लखाये।
अन्यथा हृदय जाता ही स्वामीको ईश बचाये॥
जब-जब नयनोंने मारा मुसकानोंने बचवाया।
सह वधिक रहा रक्षक क्यूँ यह नहीं समझमें आया॥
श्रावणमें एक दिवस ही सह प्रेम्य झूलना झूले।
अपने उसके जीवनकी सारी भूलोंको भूले॥
इस संन्यासीके आगे तू क्या बनती ठनती है।
मैं तो अपसर कह दूँगा अप्सरा व्यर्थ बनती है॥
प्रतिद्वन्द्वीको यह मेरा उर दहन कहाँ खलता है।
बाले ! वह ताप रहा है पर घर तेरा जलता है॥
मत अश्रुपात कर प्रेमिक शठ प्रेमित बह जायेगा।
उसके बिन आकुल भ्रामक निज हृदय कहाँ पायेगा॥
अनगिनत खेल अलबेले जो हृदय देव दिखलाते।
उनको शत चक्षु नवेले कल्पोंमें भी न बताते॥
उसके सतीत्वसे मेरा क्या ब्रह्मचर्य महँगा है।
उस चन्द्रमुखीको लखकर यों ज्ञान-सिंधु उमगा है॥
वह तो आकर कहती थी स्वामी कुछ ज्ञान सिखा दे।
मैं जा-जाकर कहता था बाले ! सब ज्ञान नसा दे॥
वेदीको, मैं तज करके देवी के पग धोता हूँ।
चारों वेदोंको पढ़के मैं आज शाक्त होता हूँ॥
वह मूर्ति मूर्त हो करके यदि रयि[1] ही कहलाती है।
तो इन मेरे प्राणोंकी क्यों प्राण[2] बनी जाती है॥
सौन्दर्य-सिन्धुकी कबतक कल्पना थाह लायेगी।
मेरे विचार करनेतक यह सौरभ मिट जायेगी॥

---

१. ओप। २. भोक्ता।

बालाओं से संयमका जगदीश्वर ही रक्षक है।
आकृष्टोंको तज देना मानों इनका कौतुक है॥
दंडी ! तेरे कहनेसे क्यों इनसे नाता तोड़ूं।
यदि ईश्वर ही मिलता हो तो ले इनको मैं छोड़ूं॥
उस विरह-निशामें रमणी शय्यापर अनुपस्थित थी।
है धन्यवाद जो तेरी स्मृति हृत्पटपर अंकित थी॥
सुन्दरियोंकी संगतिसे मैंने यह मति पा ली है।
उतनी ही वह क्रूरा है जितनी भोली भाली है॥
जब कहा तुम्हारे मन्दिर हम सब तजकर आते हैं।
बोली क्या नूतनता है मुझपर सब बलि जाते हैं॥
कलिका शय्यापर होती तो सम्भवतः सो जाते।
उनके बिन पुष्पोंके भी पल्लव कंटक हो जाते॥
रमणीसे प्रणय-क्रियामें क्या दोष आप कह देंगे।
विनिमय है यह उर देकर सौन्दर्य क्रीत कर लेंगे॥
मुझमें अभिमान नहीं है मैं गान नहीं गाता हूँ।
वह भक्त हुई तो मैं भी भगवान बना जाता हूँ॥
पर्याप्त हुआ तप संचित कबतक इसको ढोऊँगा।
सौंदर्य-हेतु बेचूंगा ग्राहकके ढिग सोऊँगा॥
चेष्टा प्रवीण होते ही मुझको निश्चेष्ट बनाया।
मेरा ही काल कहीं क्या तेरा यौवन बन आया॥
यह जन्म जगतमें लेकर अज्ञान-मात्र जाना है।
अन्यथा ज्ञान तो हमने पहले ही पंहचाना है॥
रमणी के नयन विशिखकी विद्युत् प्रशस्य अनुचित है।
ज्वर तो नयनोंको आया आश्चर्य, हृदय खंडित है॥
मुझसे भी व्यर्थ घृणा है कुछ पार नहीं है पाया।
मंदिरमें भी नारायण कहना उसने बिसराया॥
वा ब्रह्म ज्ञान हो जावे वा वह रमणी मिल जावे।
इस ही जीवनमें शंकर जो होनी है हो जावे॥
सारे संन्यासी अबतक मेरा सुनाम करते हैं।
आपस में जब मिलते हैं मुझको प्रणाम करते हैं॥
रानीके घर पहुँचा तो पुछवाया जो जैसा है।
बोली—परदेमें आजा तुझसे परदा कैसा है॥

तेरी इस चित्र-कलाने मेरा भी चित्र बनाया।
संकल्प चितेरेने ही यों मुझे पवित्र बनाया।।
भिक्षुक हो उसके मनका शुभ पुष्पन सुखवाया है।
स्वामी बनकर ही मैंने यौवन वशमें पाया है।।
मुग्धाको प्रेम सिखाना है कठिन, रूठ जायेगी।
युवती बनते ही तेरी शय्यापर आ जायेगी।।
सम्भोग योग-कौशल है सम्भोग-क्रिया उन्नति है।
उनसे उत्कृष्ट हुआ मैं नतिसे सुभगाकी नति है।।
तेरी छवि लख ईश्वर भी पानी होकर गिरता है।
अस्तित्ववान लज्जित है चक्कर खाता फिरता है।।
अश्विनी तथा धन्वन्तरि सुश्रुत वा चरक सिधाये।
सद्वैद्य युवतियोंको लख मैंने उनमें सब पाये।।
प्रत्येक नगर में सुन्दर प्रति सुन्दरमें भावुकता।
हे हृदय ! रूप अगणित धर तब हो पूरी कामुकता।।
यमके द्वारे मरनेको मैं लाखों बार रहा था।
'मृत्यो स मृत्युमाप्नोति' मेरे ही हेतु कहा था।।
सत्यके तथा शिवके तो अगणित हैं भक्त जगतमें।
मैं सुन्दरका प्रेमी हूँ है मृत्यु नहीं इस व्रतमें।।
रमणी मेरा ही मुझसे क्यों जन्म पत्र पढ़वाती।
शनि-रवि सब ही गति पाते यदि तू मेरी हो जाती।।
स्तुति विनय पिशुनतादिकका है यही दण्ड बस समुचित।
तेरा आलिंगन कर लूँ यह उचित रहे वा अनुचित।।
ग्रीवामें स्वीय भुजाएँ अकुला अकुलाकर डाली।
मेरे पद चुम्बनसे भी हो क्रुद्ध दे रही गाली।।
शव है पवित्रताका यह जिसको स्वामी कहती हो।
तुमसे कितना आगे है तुम अनुगामी कहती हो।।
गुरुदेव ! आपकी शिक्षा यद्यपि कुछ हितकारी है।
फिर भी मैं यह कहता हूँ मुझको रमणी प्यारी है।।
सौन्दर्य दिया ब्रह्माने हरिने कौशल सिखलाया।
संहार प्रेमियोंका भी शंकरने इन्हें बताया।।
जाना यदि जाना ही है आनन्द तनिक आने दो।
दो चुम्बन कर लेने दो स्तनको तो सहलाने दो।।

स्वामीजीके चरणोंको मदिराओंसे धोया है।
इस भाँति त्याज्यको भी तो कर ग्राह्य दोष खोया है।।
आलिंगन तो बल-कृत था रुचिसे सह शयन हुआ है।
आधा आधा बल छलसे निर्जित छवि चयन हुआ है ।।
हम रुष्ट तुझे करते हैं तो तेरा क्या जाता है।
तेरी अनुनय करनेमें आनंद हमें आता है।।
मेरे कपारपर उसने लिखकर आनंद दिया है।
घर नहीं तुम्हारा मिलता रस्ता इस हेतु लिया है।।
निशिका मिलाप है बाले उर खोल सजग मिल लेना।
कलको जाने क्या क्या हो किस किसका लेना देना।।
हमने भी यों कह करके रमणी वह तुरत ठगी है।
भैया दोयज दिन-भर थी अब भावज तीज लगी है।।
कर्मी थे ज्ञानी होंगे अब हैं हम आज उपासक।
इस हेतु रूप-भिक्षुक हैं यौवन-धनके हैं याचक ।।
मम प्रणय प्रश्नपर रमणी इच्छुक हो भी कहती है।
स्वामी होकर भी ऐसी आपकी बुद्धि रहती है।।
वस्तुतः किसी रमणीने उन्मत्त बना डाला है।
अन्यथा बिचारा स्वामी बालक भोला भाला है।।
जगके कौतुक लख-लखके जब यह मनमें थकता है।
तब आत्म-शान्तिके कारण सुन्दरियों को तकता है।।
रमणी-परिणयकी हमने इच्छा नित पूर्ण कराई।
यद्यपि कुछ लाभ नहीं पर हानि भी नहीं लख पाई।।
सुंदरियोंमें भी मैंने सम्मान अधिक पाया है।
स्वामी पहले कहलाकर फिर रूप-दान पाया हैं।।
छवि कहती है जीवित रह रति कहती है मर जाना।
किसकी शिक्षा मैं मानूँ यह अभी नहीं पहिचाना।।
सुन्दरियोंको यह उरगृह अपनी ही जान, दिया है।
स्वीयोंसे स्वगृह बसा लो जगको यह ज्ञान दिया है।।
क्या कारण था मत पूछो क्यों उसपर चित्त चलाया।
सृष्टिमें एक सुन्दर थी शिव सत्य हेतु ले आया।।
उसकी मुग्धावस्थामें उसको मैं नित छलता था।
दिनमें भीमेरे घरमें घृतका दीपक जलता था।।

आ गई अवस्था आधी पर प्रीति रीति दूनी है।
गृहमें रहनेवाला हूँ घरके बाहर धनी है।।
मत ब्रह्म[1] बनो स्वामीजी माया बन्धन लायेगी।
शिव[2] तत्त्व श्रेष्ठ होगा तो सब शक्ति स्वयं आयेगी।।
हे मृत्यु! मार डालूँगा यदि आज कहीं तू आई।
मानव-जीवनके फलकी इच्छा है आज बनाई।।
ऐसी भी क्या कोमल है जो नहीं हृदय तक आती।
इस दृष्टि-मार्गसे तो बस जनता है आती जाती।।
क्यों खोज अमर फलकी है क्यों तू अमृत लाता है।
मृतको जीवित कर देना सुन्दरियोंको आता है।।
देवीके भक्त सभी हैं सब ही यह अमृत चखते।
मैं उनका भक्त बनूँगा जो भक्ति भक्तमें रखते।।
स्त्रीमें श्रद्धा-धारी भी दर्शनके नित उत्सुक हैं।
रक्षकका वेश किया है वस्तुतः किन्तु भक्षक हैं।।
यह विरह पुंज स्मृतिकारी मानों यह ब्राह्मी घृत है।
जिसने स्मृति-हीन किया था वह तो अबतक भी स्मृत है।।
अस्तित्व-हीन होनेका साधन मैंने पाया है।
जो प्रणय प्रीतिके विषका दैवी प्रसाद खाया है।।
उन्मादी ही हो करके सब इसको बुरा बताते।
अन्यथा प्रेमकी निंदा पंडित कैसे कर पाते।।
इस ब्रह्मसूत्र-ज्ञाताको वह शक्ति तत्त्व समझाती।
यों ज्ञानकांड बिसराकर है कर्मकांड सिखलाती।।
सुन्दरियोंके चित्रोंका संग्रह श्रुति तत्त्व कहाता।
यह ही पुराण हो जाता जब पूर्व कथा बतलाता।।
वेदज्ञ-पुत्र हूँ गुरुवर! संन्यासी क्यों बन जाऊँ।
मैं तो जलनेवाला हूँ धरतीमें क्यों गड़ जाऊँ।।
निज कृष्ण वर्णका क्यों मैं अभिमान किया करता हूँ।
सुन्दरियोंके नयनोंमें कज्जलवत् हो पड़ता हूँ।।
मेरे यौवनको तेरा शैशव खाये जाता है।
तेरा यौवन डसनेको मुझमें शैशव आता है।।

---

१. नपुंसक। २. मर्द।

ईश्वर चिन्तन करते ही रमणी मन में घुस आई।
रमणीसे रत होते ही ईश्वरकी सत्ता पाई॥
यदि हृदय दान लेते हो आशी सौन्दर्य नहीं है।
केवल शिशु-क्रीड़ा ही को यह होता हृदय नहीं है॥
कितना ही रुचिर वसन हो रतिमें बाधक ही होगा।
नग्नत्व भले निंदित हो पर सुख साधक ही होगा॥
जो कंठ-कूपमें गिरकर है ब्रह्म रन्ध्र तक जाता।
वह मदिरा जल फिर हमको कैसे न ब्रह्म समझाता॥
प्रियतमे! आजके दिन ही मैंने तुमको पाया था।
चुम्बन से लेकर तेरे तलुओंको सहलाया था॥
आसक्तोंसे भय है तो आ मेरी रानी हो जा।
मेरा पानी रहने दे तू पानी-पानी हो जा॥
पर्याप्त छेड़ करते हैं यद्यपि पश्चात्तापी हैं।
सुन्दरियोंसे रति-सुखके हम कभी नहीं पापी हैं॥
जो पतित मुझे कहता है वह तो कोरा झूठा है।
बालाने मदिरा देकर मेरा चरित्र लूटा है॥
कोमल उर था यह तेरा अपना प्रभाव बतला दूँ।
बाले! मेरी बातोंसे पत्थर तकको पिघला दूँ॥
प्रेमी बनकर भी कोई यदि काम किया करते हैं।
तो ऐसी प्रणय क्रियाको हम तो प्रणाम करते हैं॥
तेरा वर्णन कर-करके वैद्यने बचाया मुझको।
मानों सब ओषधियोंका है सार बनाया तुझको॥
क्यों प्राणायाम करूँ मैं वह प्राण-प्रिया कहलाती।
जब स्मृति उसकी आती है तब है समाधि लग जाती॥
जठराग्नि विरह चिन्तादिक वाचिता दाहमें ही है।
दीपक सम अपना जीवन केवल जलनेमें ही है॥
अपने मनको मैं जानूँ कोई सुन्दर मिल जावै।
उसका इच्छुक मैं मानूँ यह तत्क्षण ही हो जावै॥
रमणीने मिलन-निशामें यह कहकर की गति ऐसी।
है कामदेव इस तनमें इनके आगे रति कैसी॥

सुन्दरियोंसे भी हम तो नैराश्य भाव पाते हैं।
भागी हैं जो पत्थर से[१] उद्दिष्ट सुफल पाते हैं ॥
मानवमें मानवता ही है देव-श्रेष्ठ कहलाती।
तू देवी क्यों बनती है आलिंगन क्यों न कराती ॥
सारी जनता जब उसकी प्रतिदिन माला जपती है।
तो वह देवी कैसी है जो भक्तोंसे छिपती है ॥
सूचीसे ओष्ठ सिलाकर यह प्रेम सुधा पीते हैं।
हम वमन न करते फिरते इसके मदसे जीते हैं ॥
प्रेयसी युक्त प्रेमी भी बस स्वीय विश्व रचता है।
दो-दो ब्रह्माण्ड नयनके सन्मुख लखकर नसता है ॥
कैसा हम प्रेम बतावैं यह विष है वा अमृत है।
हम तो अब यह कहते हैं जग ईंधन है यह घृत है ॥
है प्रेम्य-स्वभाव निराला विधि रचनासे ही द्योतित।
भँवरा गुन-गुनकर मरता होता न पुष्प क्यों विकसित ॥
हे कामदेव ! करुणाकर यह एक विनय सुन लेना।
चंचला कुमारी सुन्दर रमणी हमको ला देना ॥
प्रियतमा तुम्हें रुचती है तो तुम भी प्रिय बन जाओ।
यदि वेदतत्त्व जाना है तो वेद्य स्वयं कहलाओ ॥
मेरी ही प्रेम-क्रियासे यदि वह है प्रेम्य कहाती।
तब तो हूँ प्रेम्य प्रथम मैं यह पदवी श्रेष्ठ सुहाती ॥
वह शोचनीय रोगी है जो प्रेम व्यथा पा जावै।
है रोग वही भयकारी जो यौवनमें कल पावै ॥
पलका मिलाप भी जिसका तुझको है धन्य बनाता।
तो उसकी सेवा तजके तू मूर्ख कहाँ है जाता ॥
हे वायुदेव ! प्रियतमके गृह जिस पल भी हो जाना।
तो आँधी बनकर मेरी आकुलता स्पष्ट सुनाना ॥
रमणी से रमण किया है फिर भी आसक्त नहीं हूँ।
ईश्वरको पहचाना है पर ईश्वर-भक्त नहीं हूँ ॥
गह मरण मुक्ति पाने की प्रेमी ने युक्ति रचाई।
सौन्दर्यमयी सत्ता फिर उसको आशा दे आई ॥

---

१. मूर्त्ति ।

जिसके प्रेमी बनकर हम अपना जीवन रखते हैं।
वह अन्योंके प्रेमी हैं हृत्प्रेम्य नहीं बनते हैं॥
प्रेयसी, प्रेमिका होकर दुर्बल होती जाती है।
शारदी सूर्य-सम फिर भी रुचिकर होती जाती है॥
उद्यान - रक्षकों ने भी अनुचित आज्ञा दे डाली।
हों मूक कोकिलादिक भी, मत हिले पुष्पकी डाली॥
रति - शय्यापर आ जाओ वादविवाद रहने दो।
यौवनका, सुंदरताका अपना प्रमाद रहने दो॥
नयनों ने जिह्वा बनकर क्या मेरा काम किया है !
जो दृष्टि मात्रसे उसने मम उरका तथ्य लिया है !!
वह कृपा - वायुकी स्मृत है जिसने घूंघट - पट खोला।
लवमात्र प्रेमकी छविको इस प्रेम-तुला पर तोला॥
शतधा हावों - भावों से मदिरा का पात्र उठाये।
आती अठखेली करती बाला रति - राग रचाये॥
प्रत्येक सृष्टिका कौतुक तजकर ज्ञानी होते हैं।
अस्तित्व मात्र क्यों रखकर हम अभिमानी होते हैं॥
प्रेयसी अतिथि होवेगी आनन्द मुझे आता है।
पर घर-भरका कण- कण भी देखो खिलता जाता है॥
हृद्रोग मिटानेवाले अब वैद्य नहीं लख पाते।
अतएव सोचते हम हैं हम क्यों न स्वयं मर जाते॥
सुन्दरता कब छिपती है कब प्रेम प्रकट होता है।
आश्चर्य यही तो दो हैं जिनपर सब जग रोता है॥
है दृष्टि प्रेमकी नीची मुझको अनुताप हुआ है।
यह कहीं किसी भी हृद्हृत प्रेमी का शाप हुआ है॥
है अग्नि देवकी महिमा है इनका कर्म जलाना।
सम दृष्टादृष्ट समिध है इनको है भस्म बनाना॥
नारद - सी भक्ति नहीं है है कर्म न मण्डन जैसा।
शंकर-सा ज्ञान नहीं है फिर भी मैं हूँ उन जैसा॥
मनके कहने से मेरा क्यों हृदय चला जाता है।
दोनोंका यह छलमय रण मतिमें न कभी आता है॥
इस सुरापात्रमें देखो रमणी-मुख यों लख पाता।
मानो दिनमें राहूमें पूर्णिमा - चन्द्र है जाता॥

तेरे वियोगसे ही तो तुझसे मैं युक्त हुआ हूँ।
फिर योग - शक्ति क्यों माँगूँ मैं तो अब मुक्त हुआ हूँ॥
आवरण तुझे प्रिय है तो मैं भी क्यों व्यर्थ हटाऊँ।
समुचित अब तो यह ही है मैं ही इसमें घुस जाऊँ॥
शशिमें स्थित नील कमल यदि रक्तोत्पल बन जावें।
तो हम समान प्रेमी भी घर-बार छोड़ वन जावें॥
प्रेमिको! आज बालामें सुन्दरता की इति होगी।
इस हेतु प्रेम की भी तो अथ-सहित पूर्ण रति होगी।
है विष्णु - पुत्र कहलाता ब्रह्माका भी भाई है।
इस कामदेव की आशा से श्रुति - स्मृति बिसराई है॥
मदिरा थोड़ी पीता हूँ आगे तो सिन्धु बहेगा।
यदि कुछ स्वभाव पड़ जावे तो सुखमय स्वर्ग रहेगा॥
वृक्षों पर चढ़ जाने को मुझको मति उकसायेगी।
यदि कभी सुना वह बाला उपवन लखने आयेगी॥
जलमें गोता खाने का कारण मैं समझाता हूँ।
प्रतिबिम्ब प्रेम्य का लखकर आलिंगन को जाता हूँ॥
वनमें मुझको लख करके लक्ष्मण से राम कहेंगे।
पहले इसकी ढुँढवा दे सीता फिर कभी गहेंगे॥
जब रूप नहीं था जगमें मैं तब से ही प्रेमी हूँ।
कौशल न प्रेमका पाया यों नित्य कुशल क्षेमी हूँ॥
इस गृह निर्माण - कलामें श्रम अधिक हमें लख पाया।
अतएव साधु जीवन ही अतिशय हमको है भाया॥
सुन्दरियों की गाथा भी सुन्दरियों के गृहमें हो।
मन्दिरमें उनकी निन्दा क्यों है तुम किस धुनमें हो॥
इतनी मदिरा क्यों पी ली जितनी न पचा सकता है।
मदिरा - निन्दक! चल, चुप रह जनतामें क्या बकता है॥
अनुनय काँटा मन आँटा यों फेंक फाँसता जाता।
उस नयन - मीन कारण ही मैं धीवर बनता जाता॥
उद्दण्ड बना डालेगा यौवन का मद भी तुमको।
अतएव आज आ जाओ अपना ही लखकर हमको॥
देवता चतुर होते हैं अतएव तुम्हें क्या देंगे।
हम तो बस सोम पिलाकर जो चाहेंगे ले लेंगे॥

दो प्राण धारने - वाला मैं हूँ, मेरी माया है।
लक्ष्मी - नारायण • सम ही बाला मेरी छाया है।।
बालक हूँ, फिर भी मुझसे कितनी अबोध है बाला।
शैशव आकर्षित कर लूँ यों कह चुम्बन कर डाला।।
मेरा वर्णन मित्रोंसे करके, करती मनकी है।
शास्त्रज्ञ हुआ तो क्या है स्वामी कुछ-कुछ सनकी है।।
सौन्दर्यमयी ज्वाला लख सब कर्म नष्ट कर डाला।
फिर हव्य धर्म का देकर वक्षस्थल पर कर डाला।।
इस प्रेम - कुंजमें सो ही प्रेमी कुछ फल चखता है।
जो रूप नष्ट करके भी अवशिष्ट नाम रखता है।।
बिन्दुवत् मुझे सारा ही सागर प्रतीत होता है।
बिन्दु को सिन्धु सब कहते जिसमें प्रेमी सोता है।।
मैंने यदि तुझे मनाया तो तू भी मुझे मना ले।
मेरा बननेसे पहले अपना तू मुझे बना ले।।
यतदूतो ! सारे जगमें यमका उपदेश सुनाना।
जो क्षण - क्षणमें मरता हो उसको मम गृह मत लाना।।
संयम का भार अधिक था अतएव उसे तोड़ा है।
अन्यथा न मैंने अबतक छबि से नाता जोड़ा है।।
केवल विचार यह कर ले क्या कारण प्रकट नहीं है।
सन्निकट नहीं तू, तो क्या ईश्वर भी निकट नहीं है।।
द्रुतपदा द्रौपदी वह है दमयन्ती दमित सजल है।
यह पंच तत्त्व पांडव हैं यह मन ही राजा नल है।।
यम ने ब्रह्मा से जाकर कर दिया निवेदन इनको।
जितने प्रेमी मरते है मैं नहीं मारता उनको।।
उस सती - विरहमें शिवने निज खंड-खंड कर डाले।
वह खण्ड हमीं हैं जगमें समझाता है समझा ले।।
वा अमर सदा रहते हैं वा तन्मय हो जाते हैं।
सौन्दर्य - निहित प्राणी तो यमलोक नहीं जाते हैं।।
पर्याप्त इन्हें लड़ने दो मांगलिक शकुन होता है।
नयनोंके रणका देखो परिणाम मिलन होता है।।
छबि कहाँ स्वर्गमें ऐसी ? सुर - मंडल ललचाया है।
मुझमें प्रविष्ट हो भोगा अपना मिलकर पाया है।।

सर्वगा हुई रमणी क्यों उन्माद मुझे क्यों आया।
दोनों अन्योन्याश्रित हैं कुछ भेद नहीं लख पाया॥
अक्षर - अक्षरसे तेरा वर्णन करता जाता हूँ।
वस्तुतः अमर हूँ फिर भी तुझपर मरता जाता हूँ॥
साकल्य विनयका भी लख मेरा मन तो रोता है।
मुझसे अब प्रश्न हुआ है रतिमें क्या-क्या होता है॥
सुनता हूँ ध्वंस - क्रिया है अतएव प्रेम करता हूँ।
अस्तित्व - हीन होनेको प्रियतमा - हेतु फिरता हूँ॥
व्यर्थ ही कृष्ण गीतामें इसको है अमर बताता।
यह आत्मदेव क्षण-भरमें शतधा - शतधा मर जाता॥
तुम जाती हो तो जाओ हम भी द्वितीय घर लेंगे।
अपनी इस काम - कला का कोई प्रबन्ध कर लेंगे॥
यह दहराकाश महत है तेरा भी स्थान यहाँ है।
पर मुझ सा प्रेमी इसमें पाती तू भला कहाँ है॥
प्रियतमा प्रेयसी को भी उरमें हा व्यर्थ बिठाया।
उसमें जग था, सो जग ने आकृष्ट उसे कर पाया॥
योगी वह योग करे क्यों जो युक्त प्रेम से होवै।
जो कोटि चक्र - बेधक हो षट्चक्रों को क्या रोवै॥
जब विज्ञ वैद्य ने देखी नाड़ी करके कर - स्पर्शन।
बोला, सब औषधि गत हैं रक्षक है एक सुदर्शन॥
मैं ब्रह्म बन चुका ही था वह ब्रह्म-ज्ञान सुन करके।
सुन्दर होता जाता हूँ सुन्दर का सुमिरन करके॥
प्रियतमे ! जगतमें यद्यपि नित गान हमारा ही है।
अपख्याति मात्र है मेरी अपनाम तुम्हारा ही है॥
वह पंच पात्र सन्ध्या का मदिरा से भर पीता हूँ।
अर्घेसे छींटे देकर सौरभ पाकर जीता हूँ॥
रतिमें प्रमुदित भी होकर यह क्यों रोता जाता था।
इस बाल - ब्रह्मचारी का संयम बीता जाता था॥
इसको तज उसपर चलना हमको तू समझाता है।
रमणी - वियोग होते ही श्रुति - तत्त्व भाग जाता है॥
इस एक मात्र युवती ने भूतल को स्वर्ग बनाया।
तब स्वर्ग, स्वर्ग ही होगा प्रत्यक्ष नारि है माया॥

नि:सीम प्रेमका देखो प्रेमी कितना सीमित है।
आश्चर्य देखकर होता मृत है फिर भी जीवित हैं॥
द्वारिका-गगनका कारण रुक्मिणी नारिका घर था।
अन्यथा गोपकन्या के प्रति गागरमें सागर था॥
जो हृदयवान होते हैं हृदयेश बना लेते हैं।
कुछ स्थान स्वीय विकसित कर भीतर बुलवा लेते हैं॥
उरमें है जिसे बसाया कैसे मैं उसे भुला दूँ।
क्या अपने ही हाथोंसे यों घरका रत्न लुटा दूँ॥
व्युत्पत्तिवाद शब्दोंके टुकड़े-टुकड़े कहता है।
सौन्दर्य शब्द कह उरके टुकड़े-टुकड़े करता है॥
प्रतिदिन कर-ओष्ठ हिलाके अपना पद है समझाया।
प्रत्यक्ष दया तो यह है प्रत्येक बार कुछ पाया॥
जाग्रत स्वप्नावस्थाके जगको चमकाने-वाली।
अन्ततः मिल गई रमणी मुग्धा-सी यौवन-वाली॥
स्वामी इस काम-कलामें मत फँस यह भोग्य नहीं है।
यह तो बंधन-कारिणि है तू बंधन-योग्य नहीं है॥
ईश्वर! रमणीकी छविसे मेरे नयनोंको जोड़ो।
असमर्थ रहो इसमें तो लो इन दोनोंको फोड़ो॥
सौन्दर्य-सुरा मत पी तू यह ईश्वर-सृष्टि नहीं है।
प्रभु-कृति हो तो क्यों बिगड़े यह नश्वर नित्य नहीं है॥
स्थिति क्या है हाय! हमारी मन भला कहाँ अटकाया।
प्रियतमे! खोजने तेरी मेरा ममत्व भुलवाया॥
विष-पान अगर कर लेता तो सुखकी निद्रा आती।
विश्राम तनिक मिलता ही यदि मृत्यु नहीं ले जाती॥
सौन्दर्य-सुरा वय-मादित उसका यौवन लख पाया।
अद्वैत त्रयीसे मानों निज भेद बताने आया॥
श्रोता हैं चित्र लिखितसे सारे करको उर डाले।
मेरे करुणा-क्रन्दनके ज्ञाता दयनीय निराले॥
यदि तू उरमें आ जावे तो जंगलमें मंगल है।
ईश्वरका बल सबमें हो हममें तो तेरा बल है॥
उस विश्वनाथकी काशी मरनेपर मोक्ष दिलाती।
इस हृदय विश्व के पतिकी नगरी है अमर बनाती॥

धिक्कार भाग्य पर है जो वनमें रेतीमें रहना।
दूसरे रमणियोंका भी मुझको संन्यासी कहना॥
मानसमें हँस रहे हैं शिवने कैलास सँभाला।
श्रुतिमें निषेध फिर क्यों है यदि उरमें आई बाला॥
इस प्रेम-जगतपर शासन, करने दौड़े आते हैं।
शतधा मैं बिसराता हूँ स्मृतिमें आये जाते हैं॥
हे प्रेम्य ! समय नूतन है समझो तो जग समझावे।
देखो अब कोई भुनगा ले दीप नहीं उड़ जावे॥
मदिरा पीनेवाले पर जिनसे प्रभाव होता है।
संन्यासीके वचनोंमें वह तत्त्व नहीं होता है॥
हमने जीवन क्यों पाया कैसे किससे कब पाया।
जिसने इतना जाना है उसने जीवन-धन पाया॥
जगकी चिन्ता वह कर ले जिसने हो इसे बनाया।
मैं ईश्वरका चिंतक हूँ मैंने तो उसे बनाया॥
कण-कण एकत्रित करके मरुभूमि बनाई किसने।
संयोग बिन्दुओंका कर यह नदी बहाई किसने॥
उसके मुख-मंडलपर है जब तक यौवनकी लाली।
तब-तक मैं आप अमर हूँ हे ईश ! न कर रखवाली॥
जब बाह्य नेत्र ढक करके भीतर लखता जाता हूँ।
कण-कणमें बस मेरा ही प्रतिरूप रूप पाता हूँ॥
मेरे भी तो उपवनमें यह ऋतु वसंत आई थी।
पर पुष्प निकट कंटककी झाँकी न कभी पाई थी॥
चन्द्रवत् ज्ञान ज्ञानीकी सम्पूर्ण ग्रास पाता है।
कर्मी सोमपका देखो यह पर्व चला आता है॥
प्रियतमा रुष्ट है तो क्या मन उसके अर्पण तो है।
सौन्दर्य नहीं ईश्वर तो यह उसका दर्पण तो है॥
प्रतिबिम्ब दिखानेवाला प्रतिद्वन्द्वी अब दर्पण है।
इस भाँति पर-रता लख भी युवतीको उर अर्पण है॥
उरमें जबसे आई है शीतलता-सी छाई है।
हिमवती बनी है अब तो शिवको भी बौराई है॥
यह प्रेम तत्त्व वा प्रेमी जिसके ढिग भी जाते हैं।
एकान्त तुरत कर देते एकाकी कहलाते हैं॥

चंचलता तज दे बाले अब तो यौवन आता है।
तेरे वक्षस्थलपर भी अब भार तनिक छाता है॥
वाहक मेरी रमणीका संकेत-मात्र वर्णन है।
मुख चन्द्र, वक्ष अमृत घट, पद-कमल प्रफुल्ल नयन है॥
जलसे[1] सौन्दर्य हुआ है क्यों शून्य[2] हृदय अब होगा।
उसमें इसको रख ले तो खं ब्रह्म सिद्ध तब होगा॥
कैसी-कैसी प्रतिमाएँ ब्रह्माने यहाँ दिखाईं।
सौन्दर्य देख कितनी ही मैंने उरसे लपटाईं॥
यह सोच मृत्यु! प्रेमीसे मरनेको कौन कहेगा।
मरनेसे डरनेवाला कह कैसे अमर रहेगा॥
मैंने ही छल सिखलाया मुझसे ही छल करती है।
अर्जुनवत् गुरु-सेवाकी दक्षिणा-वृत्ति धरती है॥
अवकाश पाय अन्योंसे तो हो मिलाप भी उसका।
संगतिमें गति संगीकी पाता जो होता उसका॥
मन तो अपना अन्नज था अतएव इसे नसवाया।
पृथ्वीका तत्त्व समझकर पृथ्वीमें ही मिलवाया॥
यौवन कुछ आ जाने दे तब कर लेना सब बातें।
स्तनवालीको लख करके प्रत्येक सहेगा लातें॥
जगके वैभवसे ज्ञानी प्रत्येक समय ही डरना।
रमणी कमनीय मिले तो कोई विचार मत करना॥
दिन रजनीवत् शीतल है प्रत्येक हृदय कहता है।
वह पूर्ण चन्द्र मेरी तो शय्यापर नित रहता है॥
यदि अधर लाल हो जावें सौन्दर्य निखर आता है।
अतएव चूम लेने दे तेरा भी क्या जाता है॥
अपने व्रतके कारण क्यों निज धैर्य कोइ खोवेगा।
ऐसा अपराध जगतमें हमसे न कभी होवेगा॥
यह विधि-निषेधका चक्कर अच्छे मुहूर्त आया है।
मेरे शय्या चढ़ते ही मैंने समस्वर[3] पाया है॥

---

१. क।
२. ह। (क्+ह=ख)
३. सुषुम्ना।

रति-सुख मुझको देती है वस्तुतः नारि स्वीया है।
पति नहीं किन्तु स्वामी हूँ यद्यपि वह परकीया है ।।
संभवतः इसमें मेरी यह मनकी कली खिलैगी।
यह मंदिर शून्य न होगा कोई अप्सरा मिलैगी ।।
तज ब्रह्मलोकको मैं भी वैकुण्ठ नित्य जाता हूँ।
मेरी लक्ष्मीके बदले लक्ष्मी-वाहन पाता हूँ।।
प्रेम्यसे प्रेम तजनेकी तू हमको समझाता है।
हँसनेकी बात यदपि है पर क्रोध हमें आता है।।
अद्वैत ज्ञान आते ही ईश्वरका कोप हुआ है।
रमणी, मदिरा, भावुकता आदिकका लोप हुआ है।।
राजस है रजोगुणी है रजवत् सबसे डरते हैं।
सब वीर्य मिलेगा रजमें रज-प्रीति सदा करते हैं।।
रमणी प्रसन्न अब कर ले मैं अधिक न यहाँ रहूँगा।
यौवनमें तो मैं जाने किसको प्रियतमा कहूँगा।।
यदि वेदव्यास वसुधापर घूमते कभी आयेंगे।
तो तज पुराण भारतको मेरी गाथा गायेंगे।।
उसकी स्थिति वही कहेगा जिसकी स्थिति कहीं नहीं है।
उसकी गति वह पावेगा जिसकी गति कहीं नहीं है।।
उत्तरकी क्या गणना है उत्तम भी आ जावेगा।
उत्में वार्धक्य हुआ है पाणिनि क्या समझावेगा।।
है एकादशी हमारी पय-पात्र स्वीय करमें है।
बिंबाफलका भोजन है पारायण-विधि उरमें है।।
कब मदिरासे मैं अपने वैभवको मिटवाता हूँ।
संन्यास भवन बनता है विप्रत्व कुटी ढाता हूँ।।
है प्रेम्य गेह किस दिशिमें अरु कहाँ विपिनकी शोभा।
है कहाँ-कहाँ भटका मन लोभी लोभित हो लोभा।।
भीतर समाधिके भी तो वह ही प्रकाश होता है।
हाँ द्वैत भावका फिर भी देखो न नाश होता है।।
मदिरा ही लीन करेगी उनको अनन्त कर देगी।
ज्ञानीको भी तुम देखो मद्यप वसन्त कर देगी।।
जगके यज्ञोंसे देखो प्रेमीका यज्ञ निराला।
उच्छ्वास धूम उड़ता है हृत्कुण्ड दिखाता ज्वाला।।

प्रेमोन्मादने मुझको कौतुक-सा बना दिया है।
वह देख-देख यदि हँसते तो फिर क्या बुरा किया है॥
यदि यौवन-धन संचित है तो लो न, दान कर डालो।
इस जन्म दरिद्रीकी भी आओ झोली भर डालो॥
अवतक न फिरा है कोई कोई न अभी फिरता है।
अब भी न निराश फिरेगा यदि उसके पद गिरता है॥
हो चली रूप सन्ध्या भी कर दो न प्रेम तर्पण भी।
यह हृदय चाहता उनको तो कर डालो अर्पण भी॥
इस विरह-व्यथा स्वादनको दिनमें तो द्वैत रहेगा।
पर रजनीमें शय्यापर सुन्दर अद्वैत रहेगा॥
वेदान्त न्यायकी सारी हमने ख्यातियाँ पढ़ी हैं।
ख्यातिसे हमारे फिर भी यह अपख्यातियाँ बढ़ी हैं॥
अन्योंको गौरव देने वे हमसे रुष्ट हुए हैं।
उनकी इस शिष्ट कलापर हम कितने तुष्ट हुए हैं॥
है कहाँ स्फोटको जगमें वह ब्रह्म बतानेवाले।
आये न विनयसे मेरी प्रति उरमें आनेवाले॥
अर्धांश आयुका हमने रमणीके साथ बिताया।
पर आज चरणने तेरा ही मुझको शरण लखाया॥
मरनेसे ही कुछ पहले कुछ कर तो वीर रहेगा।
सरिता समुद्रमें पहुँची तो कैसा तीर रहेगा॥
रावणकी हत्या करना है सीधा काम हमारा।
हमने शैशवमें ही जो कर डाला राम हमारा॥
हैं दो जीवोंके लक्षण जो नाम-रूप कहलाते।
हम अपना नाम लिखाते अरु तेरा रूप बताते॥
प्रेमीकी यह इच्छा है मैं भक्त भी न कहलाऊँ।
प्रियतमा कर रही हठ है मैं ईश्वर क्यों न कहाऊँ॥
क्रूरता-सहित लाखों ही दीनोंकी हत्या करना।
तब कहीं कठिनता द्वारा निजको वैभव-युत करना॥
मैं भी न रहूँगा, इससे यदि बोध मुझे यह रहता।
तो दारुण प्रेम-सुराका केवल वियोग ही सहता॥
पी-पी क्यों करे पपीहे तू क्यों अनजान हुआ है।
तेरे नामोच्चारणसे प्रियका अपमान हुआ है॥

लख दर्पण रमणी बोली विधिने कौतुक कर डाला।
सौन्दर्य-नीरका सागर दो गागरमें भर डाला॥
बालाकी निन्दा करके दोषी जग व्यर्थ हुआ है।
इस प्रेम शब्दका श्रुतिमें मरना ही अर्थ हुआ है॥
इच्छासे कष्ट उठाये ज्ञानी हो भ्रष्ट हुआ हूँ।
प्रेमामृत भी पीकरके मैं देखो नष्ट हुआ हूँ॥
सुन्दर बालाने कैसे उन्मत्त मुझे कर डाला।
वेदान्त-सिन्धु भी मेरा दृग-मीनोंसे भर डाला॥
कैसे यह रोग मिटाता जब वैद्य रूस बैठा है।
प्राणेश्वर-पक्ष समझकर यह प्राण स्वयं ऐंठा है॥
सुधि जानेकी भी सुधि तो हमको न रही है प्यारी।
यह दृष्टि कहाँ डाली थी तुमने प्रियतमे तुम्हारी॥
मुक्ताफल चक्षु लुटाते यह भी कैसे दानी हैं।
हाँ प्रेम्य समक्ष विलोको यह कितने अभिमानी हैं॥
आसक्ति अन्यकी लखके आसक्ति खो गई मेरी।
फिर अन्यसक्त होते ही बस मृत्यु हो गई मेरी॥
प्रेमिका प्रेमहीना है फिर प्रेम आश क्यों उससे।
इतना विचार केवल है उरमें प्रकाश क्यों उससे॥
यदि वह मुझको मिल जावे तो गुणातीत हो जाऊँ।
मायामय ब्रह्म रहा हूँ अपना गुण क्यों खो जाऊँ॥
मुझ जैसे ज्ञानीको भी मोहित करने वाली है।
उसका द्रष्टा दर्शक है उसकी मति ऋतवाली है॥
स्वप्नमें प्रेम्यका दर्शन मैंने निशिमें कर पाया।
भाग्यने जाग करके भी हा हन्त न मुझे जगाया॥
कैसी मदिराका बाले तैंने है पान कराया।
पीते ही बस जग सारा तेरा ही रूप लखाया॥
हृदयेश हृदय रुचता है ले लो है प्राण समर्पण।
जगको निन्दा करने दो तुम तो लख डालो दर्पण॥
हे ब्रह्मज्ञान ! आ मुझको थोड़ी सहाय दिलवा दे।
प्रियतमा कहे जो कुछ भी तू वेद-वाक्य ठहरा दे॥
सन्मान-सहित वर्णन है श्रुतिमें जिन श्रुति-सारोंका।
उनको तुम क्या समझोगे लो नाम न अवतारोंका॥

मेरे उरका परिचय क्या बाला ही बस परिचित है।
शासक ही परिचित होता उसका तो स्वीय रचित है॥
वह प्रेम्य चित्र उरमें है वा मैं विचित्र होता हूँ।
यह चित्रकला-चित्रण लख मैं चित्रमित्र होता हूँ॥
दृग-नीर नहीं बहता है यह तरल प्रेमका रस है।
उर स्थित जिसने पिघलाया इसपर उसका ही बस है॥
सत्पात्र पात्र वह है जो सोमप न तोड़ने पाए।
सद्रोग रोग वह है जो रोगी न छोड़ने पाए॥
है पुष्प वर्ण तो तेरा हा! गंध नहीं क्यों पाई।
इस प्रेम-रणस्थलमें तू बरबस ही लड़ने आई॥
अन्योंपर बाण चलाये पर आप न बरछी खाई।
मैं तो प्रक्षिप्त सदा हूँ तैंने भी बुद्धि न पाई॥
अन्वेषणीय अन्वेषक कैसे अन्वेषण होगा।
अद्वैत शून्य लखकर भी अनुचर प्रेषण होगा॥
मत मेरी विरह कथा सुन तू योगिन हो जावेगी।
माता सम श्रुति स्मृतियोंकी तू सौतिन हो जावेगी॥
नारायणके नयनोंसे जब सागर भर जाता है।
तब लक्ष्मीके पय-करसे क्षीराब्धि कहा जाता है॥
धनवाला दीनादिकको कब व्यर्थ दान देता है।
केवल अपने ही पहले सुख-हेतु ध्यान देता है॥
पथभ्रष्ट किया कितनोंको कितनोंको नष्ट किया है।
है सार कहाँ क्या जगमें इस कारण कष्ट किया है॥
यदि हव्य पतंगा बनता दीपक भी हव्य बना दो।
इस प्रेम तत्त्वसे दोका दाहक भवितव्य बना दो॥
जगके अणु-अणुको दंडी बस क्षणिक समझना होगा।
अन्यथा रूप-परिवर्तन निश्चय ही कहना होगा॥
उसका ही ध्यान रहा है, आनन्दमयी प्रतिभासे।
अग्निकी गोदमें जब मैं जलता था मग्न चितासे॥
शोभा न आजतक उसकी नयनोंसे भिन्न लखी है।
अधरोंकी अमृत-सुरा भी परवश हो नहीं चखी है॥
श्रुति-स्तुत मेरे अनुनयको यदि नहीं देख पाया है।
तो सिद्धि शक्तियाँ लख ले क्यों प्रकट नहीं आया है॥

द्वैतने किया परिचित है कंचनसे कामिनियोंसे।
अनभिज्ञ अन्यथा मैं था श्रुति-द्वारा सुन्दरियोंसे॥
प्रत्येक वाद्यमें स्थित हैं कुछ विरह-व्यथाकी फूंकें।
अन्यथा शक्ति क्या इनकी जो पिक-चातक सम कूकें॥
रवि-सुत ही नहीं मिला तो शशि-सुत कैसे मिल जाता।
सौभाग्य प्रबल था फिर भी यौवन जलमें घुल जाता॥
यदि उसकी प्रेम कथाका प्रवचन इस जगमें होगा।
तो अपनी प्रेम-व्यथाका उपचार उचित-सा होगा॥
सिरपर चढ़कर भी देखो पैरों पड़ती फिरती है।
पर ऐंठन नहीं तजती है वेणी व्याकुल करती है॥
मनहीन मुझे लख करके हैं मेरे प्राण सुनाते।
हम मित्रहीन स्थित क्यों हों अतएव शीघ्र हैं जाते॥
रमणी-तनुपर सुन्दरता का भाव चढ़ा जाता है।
पर इधर हमारे मनपर अधिकार किये जाता है॥
उस नाविकने भी जगमें करुणाकी झड़ी लगा दी।
अब पार न दूर रहा है यों कहकर नाव डुबा दी॥
दो प्रेम-नदीके तट हैं अमरत्व मरण कहलाते।
सब आर-पार रहते हैं डूबे न श्रवणमें आते॥
हे प्रेम्य ! दृष्टि-शरसे यदि मुझपर आघात किया है।
तो हृदय-भूमिपर भी तो तव शासन ख्यात किया है॥
था प्रेम्य तथा प्रेमी हूँ पर्याप्त प्रेम भी होगा।
यह त्रैत सत्य त्रैकालिक अन्ततः शून्य ही होगा॥
उस रूप पाठशालामें सब ग्रन्थ प्रेमके ही हैं।
सह शयन विधानादिक भी अब कुशल-क्षेमके ही हैं॥
जब केशपाश-गत मैं हूँ कैसे निद्रा आयेगी।
मेरे स्वतंत्र होते ही वह मेरी हो जायेगी॥
वैराग्य-वेश लख मेरा सुन्दरियाँ चकित हुई हैं।
भोगी ने योग लिया क्यों यों कहकर थकित हुई हैं॥
प्राणोंको लेते ही बस मन आकर्षित कर डाला।
स्थितके अस्थित होते ही अस्थितको स्थित कर डाला॥
सुन्दरियोंको हमने तो ईश्वरका पथ माना है।
इस वाम पक्षसे हमको उत्तराखंड जाना है॥

रमणी-विलाससे पहिले सुखकर कुछ आलिंगन है।
सौन्दर्य-सुरासे पहले बस श्रेष्ठ पात्र-चुम्बन है।।
मदिरालयकी महिमा कुछ हम ही तो बतलाते हैं।
नयनोंसे हम पीते हैं सिरके बल घर जाते हैं।।
मृगनयनीकी वाणीने वीणा-सा शब्द सुनाया।
मैं पुरुषसिंह था जिसको मृग शावक आज बनाया।।
अपनी वसंत रच ली है शिवसे विरोध करता हूँ।
मेरी रति भी रोवेगी मैं काम आज मरता हूँ।।
देवीकी शोभा यह है अनुनय सुनते आ जावे।
भगवती भला वह कब है जो भक्तोंको खा जावे।।
विष्णुका एक गुण हमको अवगुण-सा ही लख पाया।
सब जगको स्वीय वधूका उसने प्रेमी बनवाया।।
मेरी स्थिरतासे देखो वह केश-पाश निदराया।
बाँधा उसने मुझको था मैं उसे खींचकर लाया।।
तेरे पतिसे यों हम तो मर्यादामें कम ही हैं।
पूजने योग्य है वह तो पर प्रेम-पात्र हम ही हैं।।
मदिरासे ज्ञान नसाया कर प्रेम मिटाऊँ मुझको।
यदि भाव-अभाव तनुज है तेरा मैं लाऊँ तुझको।।
इस प्रेम-वेदकी जगने संहिता अभी है पा ली।
हमने अथ-मात्र किया था रमणीने इति कर डाली।।
दमयन्ती अपने नलको है क्यों न हृदयमें पाती।
वन-उपवनमें शैलोंमें हैं व्यर्थ खोजने जाती।।
वामांग स्वर्ण प्रतिमा भी थी व्यर्थ रामने धारी।
वामांग हृदयमें स्थित थी अबतक सीता सुकुमारी।।
रमणी मेरी होकर भी घर-घर फिर क्यों जाती है।
मानों ईश्वरकी माया सर्वगत हुई जाती है।।
मेरा भविष्य उज्ज्वल है मेरे भी दिन आवेंगे।
तब ये निंदक ही मेरे चरणोंमें झुक जावेंगे।।
गुरुने किस हेतु कहा था यह अबतक स्मरण नहीं है।
निंदितके तनमें लख तो तू ही तो कहीं नहीं है।।
जलका वियोग सहकर ही यह गूँद पत्र योगी है।
एक भी कीट-युत हो तो दोनोंका दल रोगी है।।

अवधूत कहाँ है वह जो निज लक्ष्य स्मरण रखता है।
वह तो कर्मी है देखो पुण्योंका फल चखता है ॥
मेरा अस्तित्व मिटाकर यह बना प्रेम-मन्दिर है।
मेरे चंचल मनपर भी देखो यह कितना स्थिर है ॥
कोमल तू कहलाती है फिर भी मैं ही नवता हूँ।
यह गुण-विरोध लखकर ही तुझको ईश्वर कहता हूँ ॥
विभ्रम, अज्ञान, दुराशा, मेरे उपकरण यही हैं।
सौन्दर्य, मान, आकर्षण, तेरे उपकरण यही हैं ॥
क्या प्रेम कामका होगा यह विना काम अच्छा है।
बिन काम, जो होता वह काम सदा सच्चा है ॥
इति क्यों होवे इस अथकी जब मैं अवधूत हुआ हूँ।
स्वैरिणी स्वीय करती है स्वामीका दूत हुआ हूँ ॥
मदिरालयमें जाते ही लपटी है मदकी ज्वाला।
यद्यपि न सुरा-वर्षा है वा गायन, वादन, बाला ॥
वस्तुतः मूर्ख हैं वे जो श्रुतिसे ही पूत हुए हैं।
हमने पहले देखा है पीछे अवधूत हुए हैं ॥
वह अग्नि-शिखा सी बाला श्यामता शीश लेती है।
जिसपर है दृष्टि उठाती इंधन ही कर देती है ॥
सौन्दर्य देखकर सब ही उन्मत्त हुआ करते हैं।
उन्माद देखकर मेरा सौन्दर्यवान गिरते हैं ॥
तेरा प्रेमी लखकर ही कहते सब वैरागी हैं।
तू त्याग-तत्त्व है, तेरे अनुरागी ही त्यागी हैं ॥
मूर्तिस्थ देव विसराकर हम मूर्ति पूजते जाते।
शंकरसे विमुख हुए हैं कैलास व्यर्थ ही पाते ॥
शवमें अरु इंधनमें भी कर्तृत्व कर्म आता है।
वे उसको नहीं जलाती वह उनको जलवाता है ॥
नयनोंका ही मेला है बस आगे घोर प्रलय है।
इन दो ही के मुँदते ही ब्रह्माण्ड-मात्रका क्षय है ॥
जब नित्य मृत्यु होती थी वस्तुतः तभी जीवन था।
अब भी स्मृति-सी आती है कैसा मेरा यौवन था ॥
राधाको प्रति तरुवरमें श्रीकृष्ण दृष्टिमें आये।
फिर भी वह गोप-तनय ही केवल उसके मन भाये ॥

हम विष्णु-तुल्य ही अपना कर्तव्य दिखा जायेंगे।
इस प्रलय प्रतीक्षामें तो जो शिव हैं रह जायेंगे।।
तुमको यह कोरा भ्रम है देखो क्यों मैं रोता हूँ।
जागूंगा तब हँस लूंगा अबतक तो मैं सोता हूँ।।
शैशवमें ही मैंने तो देखो सबको खा डाला।
यौवनमें तो अब क्या है मदिरा ही रही न बाला।।
मेरे-मन मंदिरमें अब कोई आनेवाली है।
मंत्रणा-प्रदायिनि मति भी सत्वर जानेवाली है।।
हेमन्त स्मरण करके ही उद्यानोंमें जाते हैं।
अतएव पुष्पकी शोभा लखकर भी पछताते हैं।।
दर्शक समान ही हम तो तुम दोनोंसे न्यारे हैं।
प्राणोंको तुम प्यारे हो ये प्राण तुम्हें प्यारे हैं।।
दातृत्व शक्ति लख मेरी विधिने दरिद्र कर डाला।
अवशिष्ट हृदयको फिर भी देखो मैंने दे डाला।।
दर्पण केवल लखनेसे सौन्दर्य न लख पावेगी।
सौन्दर्य-परीक्षा-पद्धति प्रेमीको ही आवेगी।।
प्रियतमे ! विरहके दुखको दर्शन दे मत हर लेना।
है बहुत कष्टसे पाला उसको न नष्ट कर देना।।
सन्ध्या होते ही उसकी कुंजोंमें मैं विचरूँगा।
मेरे भी उच्च ग्रहोंकी मैं सच्ची परख करूँगा।।
हँस लो तो मैं भी रो लूँ फिर इनको कब पावेंगे।
मुसकान चली जावेगी आँसू भी बह जावेंगे।।
हैं योग्य कृपा जितनीके उससे बढ़कर आशा है।
गंगामें मिलकर भी क्यों पुण्यहा कर्मनाशा है।।
मित्रता सन्धि प्रेमादिक एकत्र जहाँ हो जाते।
उस पुण्य-भूमिमें देखो सुर भी दर्शन को आते।।
वास्तविक एक भी प्रेमी प्रेम्यको खींच लेता है।
उसके ही कारण वह भी जगको दर्शन देता है।।
उसके कपोल पुष्पोंकी मनसे सुगन्ध जाती है।
हाँ, केशराशि तो उरमें काँटे-सी चुभ जाती है।।
नयनों के सन्मुख तुमने हा मेरा हृदय चुराया।
थे श्रवण चार अंगुल ही पर कभी नहीं सुन पाया।।

मेरे घरमें वह आई तो मनमें संशय आया।
वस्तुत: यहाँ वह कैसे यह है ईश्वरकी माया॥
रो-रोकर अश्रु कणोंसे सब स्वीय वस्त्र भर डाले।
मानों घर बैठे-बैठे सम्पूर्ण तीर्थ कर डाले॥
गंगामें स्नान किया तो सब पाप नष्ट कर पाया।
वस्त्रोंसे पवित्रताका पर बोझ नहीं हटवाया॥
इस स्फटिक पात्रमें मदिरा रमणी तरुणी नामी है।
अब तो बस इस स्वामीका जगदीश्वर ही स्वामी है॥
जबसे उस चन्द्रमुखीका आचरण मुझे दीखा है।
उस ही दिनसे बस मैंने जीना मरना सीखा है॥
श्रोत्रिय ! मखमें तैंने तो केवल धूँआँ खाया है।
सद्ब्रह्म ज्योतिको मैंने तरुणीमें लख पाया है॥
जबसे हमने जाना है मरनेवाले जीते हैं।
तबसे ही बस नित उठकर सौन्दर्य गरल पीते हैं॥
इस प्रेमिकताकी गाथा रमणीको क्यों न सुनावैं।
प्रत्यक्ष वस्तुको बोलो कब तक किस भाँति छिपावैं॥
लाखों मदिरालय अर्पण कर दो मुझपर कहता हूँ।
जो बिना पिये भी देखो मैं घूर्ण नयन रहता हूँ॥
भय था सो उसे भगाया एकान्त ईश करवाये।
भय लौट-लौट कहता है लज्जा न कहीं आ जाये॥
बाले ! अब मैं न मरूँगा क्यों व्यर्थ प्रिये ! रोती है।
तुझ हृदय विष्णुके रहते क्या कभी प्रलय होती है॥
रमणीका रमण करे जो वह होमकुण्ड तपता है।
रामा तजनेवाला ही नित राम-राम जपता है॥
वेदज्ञ, तपस्वी, त्यागी प्रेमी मम तुल्य कहीं है ?
होगा पर फिर भी मुझसा अपनामित कहीं नहीं है॥
मैं आज प्रलय करवा दूँ मेरा तो क्या जावेगा।
ईश्वर ही की चिन्ता है एकाकी रह जावेगा॥
हृत्प्रेम्य आज इस निशिमें लो अतिथि हुआ है मेरा।
कण-कण अणु-अणु इस घरका चाहता न होय सबेरा॥
इस ही प्रमाणसे तेरी करुणाका पात्र हुआ हूँ।
सौन्दर्य-शिक्षणालयका मैं प्रेमी छात्र रहा हूँ॥

मत्तोंको इतना मत हँस लख तो वसन्त आई है।
सम्भवतः इसने ही बस तेरी मति बौराई है॥
सज-धज जब उस सुन्दरकी नयनों-द्वारा पहचानी।
नास्तिकों तार्किकोंने भी ईश्वरकी सत्ता मानी॥
पागल प्रेमी ! मरनेमें क्यों पछताता डरता है।
मृत्युके मोलमें जीवन सर्वदा बिका करता है॥
जीवन इतिहास हमारा गाथा है मृत्यु हमारी।
हमने ही देखो अपनी सुधि अपने-आप बिसारी॥
नयनोंसे सेंध लगाकर नत हुए मौन बैठे हैं।
यह मेरे मन-मन्दिरमें चोरी करने पैठे हैं॥
अद्भुत ही यज्ञ यहाँ हों फल भी विचित्र हो जावें।
ऋत्विज सारेके सारे यदि अग्नि स्वयं बन जावें॥
श्रुति, स्मृति, पुराण रट डाले पर भेद नहीं लख पाया।
इस प्रेम प्रीतिसे परिचित करता ईश्वर वा माया॥
हम यज्ञ-भूमिसे उसके घर जानेसे डरते हैं।
यद्यपि वह खींच रहा है पर पाँव दवे धरते हैं॥
तेरा प्रेमी भी बाले अद्भुत वैभव रखता है।
इच्छा सम्राटों जैसी उपकरण भस्म रखता है॥
शुभ दर्पण हृदय हमारा जगके सन्मुख क्यों आवे।
इसमें तो कोई सुन्दर अपने कपोल लख जावे॥
यद्यपि है दृष्टि कृपाकी फिर भी कटाक्ष उसमें है।
इस भाँति विरोधी गुणमय सद्ब्रह्म इसी रसमें है॥
झुकता आया झुकता है सौन्दर्य त्यागके आगे।
उनके यह नित पीछे है जो इसे त्यागकर भागे॥
पत्रोंमें ही बस तरुणी तू मुझे देखती रहना।
तेरे सन्मुख तो मेरा है कठिन शब्द भी कहना॥
नयनोंको देख तुम्हारे सब ज्ञान ध्यान खोता हूँ।
अभिमान प्रेम-गायनका ला-लाकर मैं रोता हूँ॥
रोदन-ही-रोदन अब है हँसकर क्या तुझे सुनाऊँ।
इस हृदय व्यथाका अनुभव तुझको कैसे समझाऊँ॥
करुणा क्रन्दन फल देगा पर्याप्त समय भी लेगा।
तबतक पर यह तो कह दे इस जगमें कौन बचेगा॥

मैं ही कुछ तेजस्वी था आया न तुम्हारी स्मृति में ।
विस्मरण क्रिया कारिणिकी कारण कैसा था कृतिमें ।।
सब हाव-भाव नैसर्गिक उन्मत्त हृदय रखते हैं ।
हैं प्रेम - सोम - श्रोत्रिय हम जगसे स्वतंत्र रहते हैं ।।
जीवन मेरा क्रय कर ले अपनी आकर्षक कृतिसे ।
मेरे रोनेसे हँस ले तो पा लूँ गति दुर्गतिसे ।।
सुन्दर बालाके जगकी प्रत्येक वस्तु सुन्दर है ।
सौन्दर्य - प्रसूता महिका मेरे मनमें आदर है ।।
कहते-कहते कहता हूँ यह श्रीगणेश है मेरा ।
बस शांति-पाठ करते ही जग मेरा और न तेरा ।।
बिन्दु भी प्रेम-सागरसे हे प्रेम्य ! न तूने पाई ।
यद्यपि इस मोह-तरणिपर मैंने तुझको दिखलाई ।।
श्रुति श्रुतपर श्रवण लगाए फिर भी स्मृतिसे तू स्मृत है ।
संन्यास प्रेमसे ले लूँ पर तू उरपर अंकित है ।।
यह प्राण प्राण-प्रिय लेगी तब प्राण-प्रियत्व निभेगा ।
अवशिष्ट रहेगा ही क्या जिसपर संसार हँसेगा ।।
यदि तू मेरी हो जाती तो मैं हो जाता स्वामी ।
अब नयनोंके सागरमें डूबते कामिनी कामी ।।
लो प्रेम्य-ज्ञान होते ही हम प्रेम-कर्म-धर्मी हैं ।
हमसे भी अब तक जगमें उत्पन्न न आचरणी हैं ।।
हे व्यथित हृदय ! अनुनय है कुछ इसपर ध्यान लगाना ।
प्रच्छन्न प्रेमकी गाथा सब जगको नहीं सुनाना ।।
जब उस कृपालु-कर ने ही करुणा करनेकी ठानी ।
तो उसका प्रेमी जगमें कैसे न बने अभिमानी ।।
प्रच्छन्न प्रेम भी मेरा अन्ततः स्वयं भासित है ।
मेरा विह्वलतासे ही हृत्प्रेम्य बोध संचित है ।।
श्रुति कहती थी वह भी है स्मृति कहती एक प्रगति है ।
उन्मत्त करे क्या निर्णय सच्ची श्रुति है या स्मृति है ।।
प्रियतमा आज कहती है अब हृदय हमारा होगा ।
मैं रूसूँगी यदि इसमें कोई अनिष्ट यदि होगा ।।
प्रेमीकी गुप्त कथामें प्रच्छन्न तत्त्व बसता है ।
भीतरसे उर जलता है फिर भी बाहर हँसता है ।।

सौन्दर्य सुमन-कुंजोंमें किस-किससे प्रीत लगानी।
हैं पुष्प असंख्यों इसमें मैं एक भ्रमर सैलानी॥
सौन्दर्य सुरा दे करके मदिराका पान करा दे।
मेरा अवसान करा दे पर अपना ज्ञान करा दे॥
संसार प्रलय होवेगी कारण प्रेमीने ठानी।
वा प्रेम्य उसे चुप कर दे वा उसकी सुने कहानी॥
हम वक्षस्थलपर अपने कर प्रेम व्यथाको धारण।
बैठे हैं मानों लेकर यों स्वीय मृत्युका कारण॥
कुछ भी हो पर कहते हैं है प्रेम कहींकी माया।
कुछ तथ्य सत्य इसमें है जो जग इसमें बौराया॥
हाँ, प्रेम तत्त्वका हमको अद्भुत विरोध खलता है।
हैं अश्रुधार दो बहती फिर भी उर क्यों जलता है॥
हैं अद्वितीय जगमें दो अद्वैत विरोधी प्रतिमा।
उसकी यौवन सुन्दरता मेरा यौवन प्रीतिक्ष्मा॥
हा प्रेम नाट्य मंचोंकी अद्भुत-सी परिभाषा है।
जो समय मृत्युका पाकर जीनेकी अभिलाषा है॥
अब केशपाश करना किस किसको फिर शेष रहा है।
मम तुल्य अन्य पक्षी क्या जगमें सविशेष रहा है॥
वह ऋतु वसन्त भी स्मृत है स्मृत है वह गंध निराली।
जिसमें मैंने कामुक हो साधुता पवित्र मिटा ली॥
यदि हृदय नहीं लेते हो तो प्राण-मात्र ही ले लो।
हृदयेश नहीं बनते तो प्राणेश्वर होकर खेलो॥
प्रेमीको प्रलयादिकका क्षण भी न ध्यान होता है।
अपनी भी तो अथ इतिका उनको न ज्ञान होता हैं॥
इस प्रेम सुरासे हमने अनुचित भूलें कर दी हैं।
गुह्यातिगुह्य गाथाएँ गा-गा करके कह दी हैं॥
ऐसे विद्वान जगतमें सर्वदा नहीं आते हैं।
जो षोडश वर्षोंमें ही श्रुति-तत्त्व जान जाते हैं॥
जगके मद्यालयमें भी है मन्त्र किसीका फिरता।
जो बिना पिये भी इसमें मादित हो प्रति जन गिरता॥
जब तेरे तुल्य जगतमें यह सार तत्त्व रहता है।
तो वह अज्ञानी है जो इसको असार कहता है॥

सर्वस्व धर्मका सुन लो सुनकर निज उरमें धरना।
प्रतिकूल लगे जो तुमको वह अन्योंको मत करना[१]॥
अधिकार प्रेमपर किसका यह लगे न लगवानेसे।
प्रेमी वा प्रेम्य विवश हों यह हटे न हटवानेसे॥
आनन्द बहुत लूटा है केवल खोया है मन ही।
जब जीत अधिक होती तो है मान्य हार निशदिन ही॥
भावोंका, भ्रू-भंगीका, वाणीका, उर-भारोंका।
तेरा ही क्या, होता मैं प्रेमी हूँ इन चारोंका॥
भोगोंके भोगी होकर सुर भी कीड़े हो जावें।
गणना मनुष्यकी तो फिर कितनी है किसे गिनावें॥
तेरे वियोगमें प्रियतम मैं सत्य कहे देता हूँ।
निद्रा ही यदि आ जावे तो स्वप्न मान लेता हूँ॥
दुखका अनुभव भी हो तो उपचार करा लें उसका।
उन्माद तत्त्व सुखप्रद है सुख-दुख अभाव है इसका॥
अभिमान न कर अभिमानी तेरी लखकर प्रभुताई।
तेरी पातित्य-सुरा ही है इसमें गुप्त समाई॥
खिल-खिलकर पुष्प बताते जो भी जगमें खिलते हैं।
वह हम-सम ही दो दिनमें मिट्टीमें जा मिलते हैं॥
मैं सौम्य प्रसून नहीं हूँ फिर भी शिरपर चढ़ता हूँ।
कंटक होनेमें सुख है वस्त्रोंमें ही बढ़ता[२] हूँ॥
सुनते हैं, जगदीश्वर भी दुखका उपाय रचता है।
पर उसकी उस रचना तक दुख लग्न कौन बचता है॥
सुंदरियोंके इच्छुक हैं संग्रही भवन-वासी हैं।
भूमिप हैं, मदिरा-रत हैं पर फिर भी संन्यासी हैं॥
मदिरा कह प्रेम-सुधाका जो पूर्ण पात्र देते हैं।
वस्तुतः वही मादक हैं मति वैभव हर लेते हैं॥
वक्षस्थलसे वक्षस्थल नयनोंसे नयन मिलाना।
फिर इस प्रेमी योगीकी तुम ब्रह्मचर्य-गति पाना॥

---

१. श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

२. पैठता।

यदि मिलन नहीं होगा तो तुम भी तो पछताओगी।
पत्रोंसे, संवादोंसे, मम मरण श्रवण पाओगी॥
इक स्वप्न सद्य परिणामी प्रेमीने आज लखा था।
हम सुननेके इच्छुक थे पर वक्ता नहीं बचा था॥
यमसे अनुनय कर लूंगा प्रेमीको सत्वर मारो।
सुन्दर रमणीका रोदन सुन लो न कदापि विचारो॥
परिजन भी क्या अद्भुत हैं पर क्या मेरा लेते हैं।
पहले तो मुझे जलाया लो अब पानी देते हैं॥
जिसने भी प्रेम किया है वह जगमें नहीं रहा है।
हा हन्त ! किन्तु हमने तो उसको भी गुप्त कहा है॥
सन्ध्यासे जो वंदी थे वे प्रात मुक्त होवेंगे।
वंदीगृहका सुख स्मृत कर सब संध्यातक रोवेंगे॥
मुक्तिसे मुक्त हो लूँ तो सच्चा मैं मुक्त कहाऊँ।
आनन्द प्रेमका तजकर यों क्यों विरक्त बन जाऊँ॥
श्राद्धके समय रमणीने मेरा गुणगान बखाना।
मैं प्रेत हुआ जी बैठा अब तो इसने पहचाना॥
अन्ततः हृदय ही तो है फिर क्यों न भला यह हृत हो।
उर क्यों न जले प्रेमीका जब स्नेह तत्त्वका घृत हो॥
चित चोर समझ उर गृहमें कैसे बिठलाऊँ तुमको।
प्रियतमा विश्वकी लखकर क्यों प्रेम्य बताऊँ तुमको॥
मृत्युके प्रेमियोंकी भी देखो क्या बन आई है।
मृत्यु ही स्वयं बाला बन तजकर लेने आई है॥
यौवनमें ही रमणीसे प्रेमिको ! प्रेम कर जाना।
फिर रुधिर उष्ण कब होगा यों वृद्ध न हो मर जाना॥
श्रृंगार करो नख-शिखका बाधकको कर मलने दो।
दीपक मुझपर ईर्ष्या कर जलता है तो जलने दो॥
अन्योंने स्पर्श किया था अतएव दलित कर डाला।
था योग्य न हार तुम्हारे आओ डालूं कर माला॥
मेरी इच्छासे मैंने जो-जो कुछ भी करवाया।
रामने, राम-बाणोंने वह कभी नहीं कर पाया॥
प्रश्वास प्रेमके भीषण उनका प्रभाव भी स्तुत है।
उर वक्ष भस्म है जलकर यद्यपि जलाश्रु प्रस्तुत है॥

तेरी सुन्दरतापर ही मम प्रेम हुआ अभिमानी।
तेरी कृपालुता बरबस मैंने सहसा पहचानी ।।
उसके उन नयन-शरोंसे सारे प्राणी ही मृत हैं।
जीवितमें इनकी गणना क्यों है, यह पूर्व सुकृत हैं ।।
उस मूर्ख अभागेका क्यों जीवन न प्रेममें नसता।
निज हृदय तथा मनपर ही जिसकी न रहे कुछ प्रभुता ।।
सौन्दर्य-ज्योतिने पलमें जो कुछ भी था कह डाला।
मैं समझ न सका तनिक भी पर हृदय दान कर डाला ।।
बस एक हृदयके कारण मैं इस जगमें रहता हूँ।
अन्यथा ब्रह्म होकर मैं मायाकी कब सहता हूँ ।।
तेरे नामोच्चारणपर मतिको विक्षिप्त बनाता।
तब बड़ी कठिनतासे मैं यह प्रेम चरित्र सुनाता ।।
इस भस्म हृदयपर देखो रूपाग्नि और मत रखना।
अन्यथा तुम्हें भी होगा हृत्पुरोडाशका चखना ।।
मैं काष्ठ चितापर भी तो रह सका न हाय ! अकेला।
उरमें सुन्दर प्रतिमा थी मनमें इस जगका मेला ।।
जो प्रेम-व्यथा-पीडित हैं वे कब मुसका सकते हैं।
मिल जाय इन्द्र-पद भी यदि तो सुख न उठा सकते हैं ।।
उस प्रेम्य-चरण-पंकजपर रज-कण मत लेकर जाओ।
हे वायु ! अश्रुसे मेरे चरणोंको धोकर जाओ ।।
आनन्द यही है मुझको आनन्द नहीं ले पाया।
भ्रूभंगी नयन-सुधासे मैं प्रेम नहीं कर पाया ।।
जिह्वापर वेद ऋचाएँ मनमें तेरी सुन्दरता।
है आत्म ब्रह्ममय नित ही मेरी है द्वैत प्रखरता ।।
अथ समय तुल्य प्रेमीमें उत्साह विशेष नहीं है।
अब तो प्रिय प्रेम्य मिलनकी भी इच्छा शेष नहीं है ।।
सब जगने शब्द सुना था सब मौन रह गये सुनकर।
जिसने उसको समझा था हो गया नष्ट सिर धुनकर ।।
नैसर्गिक यौवनवाली तुझपर बलिहारी जाऊँ।
इस भाँति दास बनकर भी दासी निज तुझे बनाऊँ ।।
प्रेमघ्न प्रियाकी सुधिने फिर हृदय फिराया मेरा।
संयमका और शपथका सारा उठवाया डेरा ।।

वह प्रेमी हृदय नहीं है वैसी है नहीं दुराशा।
उन्माद शक्ति सम अब तो है नष्ट स्वयं अभिलाषा ।।
इच्छाओंने ही मुझको जीवनसे जगसे खोया।
इस भाँति कष्ट मुझपर थे पर मेरा अनुचर रोया ।।
दर्पणमें क्या देखा है कुछ जग दर्पणमें देखो।
यदि दर्प दलन करना है तो मन दर्पणमें देखो ।।
सरने भी कमल दिखाकर मानों निज नेत्र दिखाये।
प्रियतमा बिना सारे ही जगने ओले बरसाये ।।
सौन्दर्य न लज्जित होगा कितना ही रुदन मचा लो।
है सर्वश्रेष्ठ तो यह ही सुन्दर निज शब्द बना लो ।।
तेरे उपहास-करणपर मुसकाकर मैं रोया था।
तेरे मिलनेको ऐसे आँसूसे मुँह धोया था ।।
उसके विचित्र भावोंने ऐसा उन्मत्त बनाया ।
शतधा-स्मृत कर कर भी निज भाव नहीं कह पाया ।।
तुझको तेरा सारा ही मैं भेद आज बतलाता।
निश्चय रख, नृप-अनुचर ही नृपका रहस्य लख पाता ।।
यदि चक्षु स्ववश तुम कर लो तो मैं भी हृदय सँभालूँ।
दोषी तो स्वयं बने हो फिर मैं क्यों दंड उठा लूँ ।।
किसकी आज्ञा से तूने ये नयन-बाण मारे हैं।
यदि हाँ, तेरी ही रुचि थी तो प्रस्तुत हम सारे हैं ।।
जिनसे तू रुष्ट हुई है है धन्य उन्हींका जीवन ।
जिस पर कृपालु है तू ही वह मरता करके रोदन ।।
क्या इस कारण ही उरमें यह प्रेम देव थे आये।
उर्वरा भूमिमें उरकी उर्वशी स्वयं यह लाये ।।
मेरी तेरी गाथाको श्रद्धासे विश्व सुनेगा ।
यद्यपि कुछ समय लगेगा पर तब ही काम बनेगा ।।
पुष्करवत् हृदय खिला है यह नेत्र शक्ति काशी है।
वृन्दावन बन जावेगा रक्षक शिव अविनाशी है ।।
जबसे उसको देखा है बस वेद्यमान रक्खा है।
वेदोंसे पहिले उसका अतएव ध्यान रक्खा है ।।
यह मिलन-वियोग सिधारें मैं तो विचित्र कामुक हूँ।
भीतर ही भीतरकी कुछ मुसकानोंका इच्छुक हूँ ।।

मेरी ही करुण-कथा से पर्वत सित था सुन करके।
अब समझ-समझ द्रवता है नदियों की आकृति धरके।।
हृदयाग्नि भस्म मम लेकर शिवने त्रिपुण्ड धारा था।
इस भस्म-मालने फिर भी कामको जला मारा था ।।
तेरे शरीरको बाले ! हैं वस्त्र छिपाते जाते ।
अपनी ही झलक दिखाते ये क्यों न उतारे जाते।।
बाले ! अन्तिम अनुनय है इसको अवश्य सुन जाना।
प्रेमी सब जग हो जावे प्रेयसी न तू बन जाना ।।
होता भी हव्य जहाँ है वह अद्‌भुत यज्ञ यही है।
वध करे वधिकका नित ही सो प्रेमी वध्य यही है।।
पथ-शिक्षक प्रेम बना है औषध सौन्दर्य मिला है ।
यह पथिक रुग्ण है फिर भी जीवनके साथ चला है।।
यदि मैं सच्चा प्रेमी हूँ तब तो तू भी सुन्दर है ।
दोनोंमें रण होने दे तुझको भी अब क्या डर है।।
जब तक दो नेत्र खुले हैं तबतक कोरा सपना है।
तीसरा नेत्र खुलते ही जागना सिद्ध अपना है।।
जगवाले भी रोगी हैं उन्माद लीन रहते हैं ।
मेरे समान योगीको भोगी भोगी कहते हैं ।।
प्रध्वंस नष्ट होकर मैं अस्तित्वहीन होता हूँ ।
हाँ, प्रेमरोगकी फिर भी औषधि जगमें होता हूँ ।।
उस ब्रह्मने ही माया बन वस्तुतः हमें मारा है।
हाँ, प्रेम निमित्त बना था इससे इसने[1] तारा है ।।
मेरी शोभा ही मेरा आवरण हुई है आकर ।
अज्ञान ज्ञान होता है ज्ञानी को अवसर पाकर।।
तेरे नयनोन्मीलनने सब विधि-निषेध विसराये ।
अस्तित्व भुलाया मेरा फिर विस्मृत तत्त्व लखाये।।
सौन्दर्य लूट लेता है पथ-भ्रष्ट सरलता करती ।
इस प्रेम निविड बीहड़में मतिमानों की मति डरती ।।
तेरे प्रेमी बननेमें यों हमने प्राण गँवाये ।
सन्तोष किन्तु यह ही है हम प्रेम-तत्त्व लख पाये।।

---

१. प्रेमने।

मैं दीप तुल्य नसता हूँ मानों निज धाम सिधाता ।
अस्तित्व मिटा रुचिका तो अब अपना भी मिटवाता ॥
नर-तनुमें नारायण है तू कहाँ खोजता फिरता ।
ले देह-गोपिनी मणि भी नयनोंमें व्यर्थ विचरता ॥
प्रस्तरवासी यदि सुन ले तो सफल प्रार्थना तेरी ।
अन्यथा तीर्थ आदिकमें है विषम प्रस्तरी ढेरी ॥
यदि ज्ञान-बुद्धि तुझमें थी तो जगमें क्यों रहता था ।
मदिरालयमें ज्ञानीका क्या काम, कौन कहता था ॥
तब तो बढ़ता जाता था ले नष्ट हो गई दूरी ।
अब तो इतनी-सी ही है जैसे-जैसे कर पूरी ॥
मन गया रहा एकाकी कितनी बाधा लाया है ।
हमने क्या तो सोचा था पर क्या होने आया है ॥
जब-जब व्याकुल हो खोजूँ तब तब ही उरपर कर है ।
मानों इस घरकी लक्ष्मी इस घरके ही भीतर है ॥
मत विरह निशाकी पूछो दो वस्तु अटल लख पाई ।
मेरा क्रन्दन, ध्रुवतारा दोनोंने होड़ लगाई ॥
उद्यान वसन्त सुरा है प्रिय प्रेम्य-रूप लख पाया ।
यदि ब्रह्मचर्य व्रत जावे तो लखो मूल्य भर पाया ॥
अब कृपा-दृष्टि मत करना है ही क्या आवश्यकता ।
मुझमें यह भारवहनकी अब रही नहीं है क्षमता ॥
इस प्रेम-रणस्थलमें हम रक्षा किस भाँति करेंगे ।
हे हृदय ! आज तो तेरा शंकर ही भला करेंगे ॥
माया ईश्वर-ढिग तुझको कैसे जाने देती है ।
जब मातृ-तुल्य तुझ शिशुको अब तक लोरी देती है ॥
विस्तृत खंडित जगमें भी सर्वगत ब्रह्म लखता था ।
उन्मत्त हुआ भी शुक तो चातुर्य किया करता था ॥
निन्दा कर-कर थक करके यश गान किया करती है ।
हा हन्त ! मारनेवाली मृतसे पहले मरती है ॥
अप्सरे ! वृद्ध आया है इसको कुछ आज पिला दे ।
मदिरासे यह डरता है शतवर्षी आसव ला दे ॥
तिथि-प्रश्न पूछते क्या हो मेरा तो व्रत बस यों है ।
मैं वार-योग्य हूँ गुरुवर मेरा वारण फिर क्यों है ॥

घटना विचित्र है देखो वह प्रेम प्रवीण कहाता।
जिसका अरण्य-रोदन भी बालाके देश न जाता ।।
तेरे रहते अन्योंका सौन्दर्य नहीं लख पाता ।
रविके प्रकाशमें देखो नक्षत्र-मात्र छिप जाता ।।
भासित स्वज्योतिसे ही हूँ ब्रह्मा न मृषा बुलवाये।
यद्यपि कितने गुरुओंने इस रविको दीप दिखाये।।
प्रेमातिरिक्त जीवनका फल कौन हुआ करता है ।
वस्तुतः वही जीता है जो अन्योंपर मरता है।।
मोहन वा वशीकरण मैं नयनोंको ही कहता हूँ।
निशि-भर इन दोनों ही को मैं जाग्रत-सा करता हूँ।।
प्रत्येक जीव जगतीपर उरके भीतर बतलाता ।
तेरा ही चित्र कहीं क्या इस जगमें हृदय कहाता।।
इस जगने सिखलाया है कैसे असार यह रहता ।
जब मेरी तृषा बुझा दी कैसे मृगतृष्णा कहता।।
वेदना प्रेमकी देखो वस्तुतः हुई सुन्दर है ।
रमणी आकृष्ट हुई है सुनकर मानों सुखकर है ।।
जीवन ही रोग बने तो उपचार करूँ मैं कैसे।
मुत्यु भी कुपथ्य सुनी है तब ही सिर धुनता ऐसे ।।
मेरे देशाटनपर तुम क्यों रुष्ट वृथैव रहे हो ।
मैं जहाँ रहा हूँ देखो नयनों में तुम्हीं रहे हो ।।
शतक्रतु होने वाला था पर जबसे तू लख पाई ।
इच्छा मैंने तज डाली तुझसे ही प्रीत लगाई ।।
व्रत, धर्म प्राण जाते हैं जाने दो, जा सकते हैं ।
क्या वस्तु-निरीक्षक जन भी यों मूल्य पूछ सकते हैं।।
प्रणमात्र टूटता मेरा अवशिष्ट धर्म रहता है ।
इस भोग-क्रियाको फिर भी जग क्यों कुकर्म कहता है।।
माँझी नौका सरिता-तट मैंने न एक भी पाया ।
फिर भी इस भवसागरसे कितने मोती मैं लाया ।।
वेणीमें हृदय फंसाया वा मन कपोलपर वारा ।
हा ! शुक्ल कृष्ण दोनों ही पक्षोंने मुझको मारा।।
प्रेमाग्नि नहीं बुझती है यह हव्य बिना भी जगती।
हा ! भस्म हृदयकी मेरे अबतक भी रही सुलगती।।

सौन्दर्य अश्व शैशवसे थोड़ा ही दूर गया है ।
यौवनतक कब पहुँचा है पथमें विश्राम लिया है ॥
सिरके ही बल चलकर जा यदि तेरे पाँव थके हैं ।
पुष्पित पथान्त है तेरा कण्टक केवल मगके हैं ॥
जड़से लेकर कोंपल-तक पुष्पों, पत्तों, डालोंमें ।
मेरा इतिहास लिखा है इन उद्यानित जालोंमें ॥
इस प्रेम सुराका मद भी कितना चढ़नेवाला है ।
जो जहाँ पड़ा है उत ही उतना ही मतवाला है ॥
सौन्दर्य-सूर्य उगते ही नक्षत्र-दोष छिप जाते ।
कितने भोले हो तुम जो उसको दोषी बतलाते ॥
इस प्रेम-पाठशालाका उलटा-सा नियम लखाता ।
जो पाठ घोख लेता है वह घर कब जाने पाता ॥
तुझसे मैं मिल ही लूंगा मिलने में कुछ देरी है ।
यह तेरी शपथ नहीं है यह तो लख ले मेरी है ॥
शत-शत ये छिद्र हृदय के साक्षी हैं सत्य कहेंगे ।
अधिकार जताकर ही हम तुझसे कुछ वाद करेंगे ॥
स्वामीकी बातोंका भी हम पार नहीं पाते हैं ।
रमणी लख मर जाते हैं संन्यासी कहलाते हैं ॥
प्रत्येक शास्त्रका विवरण मैं निज शब्दों से देता ।
हाँ, किन्तु मौन ही तुमसे सबके उत्तर मैं लेता ॥
प्रेमी इस प्रेमकलामें क्या आगे नहीं पढ़ा है ।
जो प्रथम पृष्ठ सामुद्रिक हँस-हँसकर देख रहा है ॥
स्पर्धा उस कण्टकसे है जिसने उँगलियाँ दुखाईं ।
करुणा उन कलियोंपर है जो पुष्प नहीं हो पाईं ॥
सौन्दर्य केश भावादिक जो तनसे बाहर आया ।
प्रियतमे ! उसे ही हमने चक्कर खाता लख पाया ॥
उपदेश वज्र-जैसा हो वा वह अमृत-सा होगा ।
इस प्रेम सुराके मदका आवेश शमित क्या होगा ॥
मद्यप यदि आप न होते आचार्य बनाता तुमको ।
इस शिक्षाके बदलेमें परिणय दिखलाता तुमको ॥
मुख पुष्प हुआ है इसका सम्भवतः कभी खिलेगा ।
दीपक विहान होनेतक प्रत्येक प्रकार जलेगा ॥

उसकी कठिनाईमें भी हा ! दृष्टि सरलता आती ।
कठिनाई सरल कभी भी मेरी न कभी सुन पाती ॥
अपने पर भी हँसता या इतना हँसोड़ ख्यातित था ।
अब हास्य दृश्य लखकर भी देखो कितना चिन्तित था ॥
दो हैं ईश्वर-निर्माता मैं तथा राम जग-भरमें ।
रामेश्वर दक्षिणमें है मेरा ईश्वर उत्तरमें ॥
हा ! धर्म-चरित्र नसाये फिर भी न मौन धरती है ।
अब सम्प्रदायपर भी तो आक्रमण किया करती है ॥
दुर्भाग्य देख लो मेरा छूटा जग-भरसे नाता ।
पुष्पोंका हार उठा लूं तो वही सर्प बन जाता ॥
हे ज्योतिर्मयी ! तुम्हारी ज्वालासे कब बलता हूँ ।
अन्योंको फूंक लगाते ही देख-देख जलता हूँ ॥
सटकर जो शयन नहीं है वह शयन भला कब होता ।
हाँ, कहीं उष्णता हो तो सटना कुछ बाधक होता ॥
तुमने तटस्थता लेकर भवसागरके तट छोड़ा ।
इच्छा थी मुझे डुबाती इस करुणा से मुख मोड़ा ॥
मेरा घर लखती जाओ अपना घर मुझे लखा दो ।
यद्यपि तुम अपरिचिता हो पर परिचय स्वीय सुना दो ॥
हे दूत ! तुझे कहता हूँ आज्ञाको मत ठुकराना ।
मेरे पत्रोत्तरमें तू पानेवाले को लाना ॥
मनसे तेरी छबि रहती तव प्रीति आ बसी तनमें ।
फिर प्राण भला कब रहते मेरे तनमें वा मनमें ॥
सुर विजयी हो जावेंगे असुरोंको लज्जा आती ।
वह चन्द्रमुखी केशोंको मुखसे है स्वयं हटाती ॥
नैषध वा शकुन्तलादिक मेरी गाथाके आगे ।
है कौन भला सुन सकता यह सोच विश्वसे भागे ॥
मन्दिरमें उस रमणीने ताम्बूल भला क्या खाया ।
मेरी हत्या करने का बीड़ा-सा आज उठाया ॥
तुझको लखकर मैं अपने लखनेको भी लखता हूँ ।
जब लखना स्तुत लख पाता तब धन्य-धन्य कहता हूँ ॥
यदि परीक्षिका बनती हो तो क्षमा करो स्वामीको ।
खोज लो किसी भी अपने चाकरको अनुगामीको ॥

क्या हुआ प्रेममें तेरे यद्यपि मैं दोष न देता।
कुंजोंमें जाकर भी मैं पुष्पों की गन्ध न लेता॥
सन्मुख उसको आने दो कब द्वैत त्वैत सहता है।
दुर्भाग्य बीचमें दोके देखूँ कैसे रहता है॥
यौवन चढ़कर आता है हे सुंदरताकी रानी।
मन्त्री रख मेरे मनको मुझको कर दे सेनानी॥
शिव शिव कहता भी पहुँचा सुन्दरियोंमें ही स्वामी।
रति-वरकी स्मृति कर शिवने मानों कर डाला कामी॥
भृकुटी तो चढ़ी हुई है फिर भी गलबाँही डाले।
मुसका करके कहती है ले स्वामी! मुझे मना ले॥
जबसे उसको मदिराका वह मैंने पात्र दिया है।
भाषण, चुम्बन, आलिंगन बस क्या-क्या नहीं किया है॥
रामारत हो बैठा है पढ़ते-पढ़ते रामायण।
मन्दिरमें वामी पूजा कर नारायण-नारायण॥
प्रेमने हाय! दोनोंको साथही साथ तड़पाया।
वह अपने घरसे निकली मैं अपने घर से आया॥
है पात्र हृदय रति रुई कुछ स्नेह तैल दिलवा दे।
दीपक लख इस स्वामीको जो चाहे जब जलवा दे॥
यह कभी हुई न हुई है आगे भी कब हो सकती।
तेरे मेरेमें स्वामी बस और नहीं बन सकती॥
पुष्करवाली बालाका प्रेमी इनपर मरता है।
स्वर्गकी अप्सराओंकी वह चाह नहीं करता है॥
उसके हावों भावोंका कुछ दिन है भार उठाना।
हे काल! प्रार्थना यह है दुर्बल कर मत ले जाना॥
जब कहा दूतने, तुमने अपना प्रेमी पहिचाना।
बोली, स्वामी पागलकी बातों का कौन ठिकाना॥
मिस्सी वह कब मलती है कहनेमें शरमाई है।
मैंने निष्ठुर हो चूमा नीलिमा अतः आई है॥
दर्पण उसने क्या झाँका लड़ गई अप्सराएँ दो।
पहिली भीतर जानेको दूजी बाहर आने को॥
उसकी कृपालुताका यदि ये भेद कभी पा जावैं।
मुझ पापीके चरणोंमें सब पुण्यवान् पड़ जावैं॥

रमणी अनुतापिनि होकर क्यों करतलको मलती है।
मिंहदी सब छुट जायेगी क्यों बिरहिन हो जलती है॥
मदमत्त सही पर जगमें थोड़े दिन तो जी लेगा।
सुन्दर हाथोंसे तो बस ब्रह्मा मदिरा पी लेगा॥
आनंद प्रेमका मुझसे पूछो सब इसकी माया।
मैंने कितने जन्मोंसे यह किया तथा करवाया॥
वह नहीं किसीकी सुनता हम बतलाये जाते हैं।
योगी ज्ञानी पंडित सब अपनी गाये जाते हैं॥
सौंदर्य-निहित प्राणी फिर शुभ गति किस भाँति न पाते।
नयनोंके मरघटपर जब आँसू उनको नहलाते॥
कब फूल तोड़ सकता था मैं उपवनमें घबराया।
अपनी चादर का काँटा भी कब निकालने पाया॥
तू वचन-दरिद्र बनी रह मैं मन-दरिद्र निश्चय हूँ।
तू उत्तर मत दे वाले ! मैं अनमन भी निर्भय हूँ॥
स्तन क्यों ढककर चलती है क्यों तू है इसे दुराती।
चोरीका माल नहीं है यह तेरी थाती थाती॥
उठ बैठ कराकर शुकको मैंने उन्माद सिखाया।
फिर भी यौवन आनेपर वह कब इसको रख पाया॥
ज्ञानी हूँ पर यह डर है जब यौवन आ जावेगा।
तब कहाँ-कहाँ किस-किसपर मेरा मन ललचावेगा॥
यह हृदय वेदना मेरी बढ़ती है उपचारोंसे।
जीवित फिर भी रहता हूँ उसके दुर्व्यवहारोंसे॥
करुणा क्रन्दनपर मेरे हँसकर रमणी कहती है।
करुणा-कारिणि रमणी भी भागीका कर गहती है॥
तेरा मन बहलानेका समुचित ही यत्न किया है।
तेरी सब सखियोंको भी इस मनमें बसा लिया है॥
यदि तू न दृष्टिमें आती संदिग्ध शक्तिको कहता।
मेरे अभावमें कह तो शिव तत्त्व भला कब रहता॥
अन्योंकी फिर संगति कर अपनामितमें हो रेखा।
कल्पना मुझे जिसकी थी हो गया वही ले देखा॥
उरको निकाल डालूंगा दुर्गति स्वीकार नहीं है।
तेरे समान क्या मेरा इसपर अधिकार नहीं है॥

तन मन धन यौवन व्रत भी जो था सब माँग लिया है ।
पर अपना भेद उसे तो अबतक भी नहीं दिया है ॥
मनवाले मारे जाते हो गया अमर अन्मन है ।
इस प्रेम राज्यका देखो कैसा अद्‌भुत शासन है ॥
सौन्दर्य तथा शैशवको लखकर समझाता मन है ।
दो छलियोंके शासनमें अबतक उसका यौवन है ॥
भारत एवं रामायण जो रत्न रहे वसुधाके ।
दो पृष्ठ बने हैं पहले मेरी उस प्रेम कथाके ॥
संबंध स्वीय इच्छासे सब जगसे रखवेवाले ।
संबंध शत्रुताका रख मुझसे भी ओ मतवाले ॥
दुर्गुण जबसे आये हैं मंडप मंदिरको छोड़ा ।
बस सुरा, वारवनिता से मैंने भी नाता जोड़ा ॥
गंगा-जल वह हम तो बस दिन-दिन ढलते जाते हैं ।
प्रख्यात ढालनेवाले भी ढला हुआ पाते हैं ॥
उसके दो नाकारोमें हाँ है, अनेकता भी है ।
पर दोष बुद्धिका ही है कुछ भाग्यहीनता भी है ॥
प्रस्तर प्रणपर पड़ जावे अबतक कैसे न पड़ा है ।
उसके प्रणके कारण ही लो जपना प्रणव पड़ा है ॥
गृहिणी से कर-ग्रन्थन कर यद्यपि फिरते रहते हैं ।
फिर भी ग्रह बनकर जगके गृहहीन हमें कहते हैं ॥
आनंद भोग इस जगमें जीवन कब-कब आयेगा ।
जीवन शतका भी हो ले पर यौवन कब पायेगा ॥
कब न्यायशास्त्र पढ़ती थी कब न्याय उसे आया है ।
पर कौन न्यायसे जाने उसने अब ठुकराया है ॥
अपराध प्रेमका लखकर यह विरह-दण्ड दे डाला ।
यों समुचित न्याय समझकर हँसकर रोया मतवाला ॥
पहले ही प्रेम्य बनाया अतएव नहीं रोते हैं ।
अब तो अवगुण भी उसके गुण ही प्रतीत होते हैं ॥
देवी स्वामिनि मित्राणी अनुरागिनि चेरी हो जा ।
कर वैर शत्रुणी ही हो कुछ भी तू मेरी हो जा ॥
श्रुति तत्त्वों की रक्षाको जगने स्मृतिग्रन्थ बनाये ।
पर तेरी स्मृतिने बाले निगमागम शास्त्र भुलाये ॥

स्त्रीसे संबंध किया था यह विरह पुत्र पाया है।
मैं पिता तृप्त हूँ शिशु ही माँ-माँ कर चिल्लाया है ॥
हिन्दी अपनी भाषा है हम गुरु हैं सत्य कहेंगे।
हिन्दी जिनको पढ़नी है चरणोंमें सदा रहेंगे ॥
नागरी तथा ब्रजभाषा दोनों पर ही शासन है।
संस्कृत इनकी मातापर न्योछावर अपना मन है ॥
चांचल्य साथ लज्जा के उसको अनुपम करता है।
ऐश्वर्य-विरोधी गुणको क्या निकट नहीं धरता है ॥
तुम श्रेष्ठ सदा हो मुग्धे मम नेत्र श्रेष्ठतर ही हैं।
श्रेष्ठतम भाग्य है मेरा मिलते नित सुन्दर ही हैं ॥
पर्याप्त रूप मैं देखूँ आशय है इस स्वामीका।
दूसरा जन्म कब होता बोलो न मोक्षगामी का ॥
क्षण भी न जिसे दे सकती सान्त्वना कभी तुम सजनी।
मैं शान्त हृदयको रखता हूँ भारी सारी रजनी ॥
थी तुलने योग्य सुमनसे सो नेत्र-कमलसे तोला।
पर हाय ! भार इतना था जो गया न मुखसे बोला ॥
दर्शक मृत वा उन्मादी वा हृदय विद्ध होता है।
सुन्दरियोंसे इस जगका क्या कार्य सिद्ध होता है ॥
बरबस कल चुम्बन करके उसको तो रुष्ट किया था।
पीड़ा तो शान्त हुई कुछ उर तो सन्तुष्ट किया था ॥
चेतना तुझे आवे तो ऐसा विचार होता है।
यह प्रश्न करूँ मैं तुझसे क्या चेतित भी होता है ॥
हा प्राण-हारिणी स्त्रीपर आसक्त हुआ फिरता है।
प्राणोंके उस पोषकका तू स्मरण नहीं करता है ॥
रक्षकको भक्षक गिनने वाला रोगी क्या जीवे।
अमृतका फल क्या उसको जो विष कह-कहके पीवे ॥
यदि आत्मबुद्धिसे कोई ईश्वर-निंदक था क्या था।
हाँ, अहं-बुद्धि, स्त्री-द्रोही भी पापी था गदहा था ॥
जीवन मदिराके मदका है नाश मृत्युके द्वारा।
यौवन मदिराके मदकी कब शान्ति हुई न विचारा ॥
हे सर्वश्रेष्ठ प्राणी ! यह मानव कह किस कारणसे।
एकाकी यह उत्तर है बस प्रेम व्यथा धारणसे ॥

उसके कटाक्ष लखनेको देखो न विरक्त हुआ हूँ।
गृह परिजन यों त्यागे हैं बंधन-हित मुक्त हुआ हूँ॥
पंडितजी मदिरालयमें क्या हुआ नहीं यदि आते।
रवि इन्द्र चन्द्र तव पूजित समयानुसार नित आते॥
जाना ही है प्राणोंको तो क्यों न जायँ तेरे प्रति।
क्या आज तथा क्या कल है है एक काल मेरे प्रति॥
मृत्योपचार सम्भवतः मम हित अवशिष्ट रहा है।
अन्तिम प्रयोग यह ही है क्या किसने अधिक कहा है॥
निन्दकसे युद्ध करूँ क्यों वह क्यों परत्व है धरता।
मेरे शरीरमें उसकी निन्दा मैं भी तो करता॥
पाला, रवि-किरणें, वर्षा जनदृष्टि, ओस पय ही है।
प्रत्येक काल पुष्पोंका देखो संकटमय ही है॥
वा तो सौन्दर्य-प्रणेता वा सुन्दरियाँ आ जावैं।
सौन्दर्य नहीं चाहेंगे तुम कहो शपथ कर जावैं॥
मखशालामें धूँआँ है बिन रुदन अश्रु आते हैं।-
मंदिरमें कमसे कम दो पत्थर तो दिख जाते हैं॥
दर्पण लखकर वह मुग्धा वैष्णवाचार करती है।
निज छबि को ईश समझकर अपने पैरों पड़ती है॥
लहरोंपर कब जम पाई सिरपर जमती है काई।
नारदी वृत्ति रखता तो होती क्यों विश्व-हँसाई॥
दर्पण सन्मुख आते ही अद्वैत द्वैत होता है।
दर्पण भी यदि सत हो तो प्रत्यक्ष त्रैत होता है॥
विद्वानोंमें न भले हों सुन्दरियोंमें तो स्तुत हैं।
अच्युत है प्रेमकलाके यद्यपि स्वजातिसे च्युत हैं॥
मैं कुम्भक इच्छाओंका जगवाले रेचक ही हैं।
सुन्दरियोंमें भी देखा पूरक ही कहीं नहीं हैं॥
किस कुसमयमें हाँ देखो जगने भी मुझे सराहा।
मृत हो श्मशानमें स्थित था पंडित करते थे स्वाहा॥
विस्मृत उरके प्रति मेरी अब तो यह ही इच्छा है।
त्वत्पथमें यदि तुझको ही मिल जावै तो अच्छा है॥
था कठिन प्रथम तो जीना अब मरना कठिन हुआ है।
लखते-लखते पाया है फलदायी हवन हुआ है॥

आई मिलकर बोली भी फिर गले लगी घर भागी।
पर मेरी तो वह इच्छा सोती ही रही न जागी॥
लो पतित मूर्ख कहकर भी मुझसे अवश्य मिलती है।
मेरी प्रत्येक क्रियाको मूर्खता मान खिलती है॥
पौराणिकसे दश-दश पग में नित पीछे रहता हूँ।
जो भूत कथा कहता है मैं उसे प्रेत कहता हूँ॥
इससे मैं घबराता हूँ यद्यपि पर्याप्त स्वकृत है।
वह कष्ट प्रेममें पाया ईश्वर स्मृति भी विस्मृत है॥
हाँ, कृपा पात्रको भी तुम आश्वासन ही बस देना।
रोनेवालेको लखकर निश्चय तुम तो हँस देना॥
क्या मिलना और मिलाना मैं दोनोंमें रहता हूँ।
हाँ, उसे मिला लेना ही क्लिष्टतर कार्य कहता हूँ॥
उपचार करो औषधि दो कर डालो जो है सारा।
तुम कर्म न छोड़ो अपना आगे है करम हमारा॥
सौन्दर्य प्रेम दोनोंको कोई न दोष देता है।
दोषी केवल यौवन है यह वाम रोष लेता है॥
मन्दिरमें मखशालामें वाणी द्वारा जग-भरमें।
तेरा गुणगान बता तो हो रहा नहीं किस घरमें॥
हेमन्त हुआ भँवरा ही उद्यान नष्ट करता है।
स्मृति सुमन दिलाते उसको अब कब इनको वरता है॥
मेरा यदि प्रेम बढ़ा है क्यों तेरा उर डरता है।
आगन्तुक सुन्दरताका बढ़कर स्वागत करता है॥
सूचना भ्रष्टताकी ही मेरी सबको देती है।
है भाग्य-भ्रष्टता मेरी यों ख्याति मुझे देती है॥
अर्जुन विराट् दर्शनका इच्छुक ही कभी न होता।
यदि एक गोपिकाका भी वह हृदय देख कुछ रोता॥
मदिरा यद्यपि छोड़ी है फिर भी यह कर देता हूँ।
नवरात्र पौर्णिमादिकमें वहुधा पी ही लेता हूँ॥
उस चन्द्रमुखीकी स्मृतिमें चाँदनी खिली रहती है।
उस ही में गा लेता हूँ वस्तुतः वही कहती है॥
केवल इस कारण ही तो उसने न आज तक माना।
दोषोंको भी अत्युत्तम चाहा उससे कहलाना॥

मत पूछो क्या इच्छा है विफला ही कहलावेगी।
मेरी इच्छा सुनते ही तुमको लज्जा आवेगी॥
आलिंगित हो कहती है कर पूर्ण चाह तू मेरी।
मैं विलग हुआ कहता हूँ यह चाह रहे बस तेरी॥
इसने यदि लोक नसाया उसने परलोक नसाया।
उसकी तृष्णाने भी तो उसका ही रंग दिखाया॥
मदिराकी इच्छासे ही मदिरालयपर भी स्वामी।
पानी-पानी चिल्लाया जगमें है ढोंगी नामी॥
मदिरा दी वा गंगोदक मद क्यों न मुझे छाया है।
मद विरह-मत्त हो जाऊँ अब यह उरमें आया है॥
काशीवालों की अबतक अनुकम्पा मुझको स्मृत है।
उपवास व्रतादिकपर भी बस पंचगव्यमें घृत है॥
हे हृदय मंत्रणा क्या है निज मौन आज तुम तोड़ो।
जगवाले यह कहते हैं तुम प्रेमकार्यको छोड़ो॥
रवि-चन्द्र तुल्य स्तुत होकर हो मत्त उड़े फिरते हैं।
दुर्योधन दुश्शासनवत् अपख्यात हुए गिरते हैं॥
अप्सरा सुराके कराण क्या यज्ञ किया करता है।
मदिरालय वार-गृहोंमें क्यों नहीं चला करता है॥
किन्नरी अप्सरा देवी यद्यपि मन समझावैगा।
तेरे रहते पर उनको चाहना कौन चाहैगा॥
हा ! यज्ञ-भूमिमें उसने कर लिया हरण उर मेरा।
था अग्निदेव-सम रक्षक हो गया स्वयं वह तेरा॥
वह आम्र चुम्बिका कोकिल क्षण-भरमें बंदी धृत है।
इस पूज्य वधिकके पदपर मालीका मन अर्पित है॥
वैताल, भूत, प्रेतादिक नित गली-गली फिरते हैं।
हाँ, शंकर तो काशीमें भागीको ही मिलते हैं॥
गुरुदेव ! प्रार्थना यह है उपदेशक मत बन जाना।
उन्माद मुझे जब हो तो मंत्रणा कभी न सुनाना॥
उरमें तो वह पीड़ा है जिसकी औषधि तुम ही हो।
पथ्यकी कथा भी यह है बस अद्यावधि तुम ही हो॥
भक्तिमें ज्ञान निंदित है मदिरामें घृत दूषित है।
उन्मत्तोंकी संगतिमें उपदेशक ही वर्जित है॥

स्वकथा कहते-कहते ही निर्बोध हो गया था मैं।
उसका उत्तर क्या जानूँ क्या श्रवण पा गया था मैं॥
इतना तव नाम जपा है बस पुरश्चरण कर डाला।
जगके समक्ष तुझको भी मैंने ईश्वर कर डाला॥
वर्षामें तो तुम आये अब उपालम्भ धरते हो।
यदि प्रेम तुम्हें करना है क्यों निष्प्रभाव करते हो॥
दर्पणमें तो लख स्वामी पड़ता यौवनके पाले।
'सुन्दरी' तुझे लख कोई हाँ, भ्रष्ट नहीं कर डाले॥
यौवनमें ज्ञान किसे था कुछ आज समझमें आया।
मैंने ही मेरा वैभव हा ! देख नहीं कुछ पाया॥
दुख शोक प्रेममें धन है जो नित यह सुनती रहती।
मुझ जैसे आनंदीको प्रेमी वह कैसे कहती॥
चिन्ता क्या आज चितामें यह स्वीय देह जलता है।
अब जग-व्यापी होनेको यों यज्ञ-धूम बनता है॥
सौन्दर्य छोड़कर भागा क्या ध्यान किया करती थी।
मुग्धे ! तू किसके कारण अभिमान किया करती थी॥
मुझपर मनोजने देखो क्या प्रेम-बाण बरसाया।
मानों यमसे ही यह तो है होड़ लगाकर आया॥
दर्शन का सार यही है दृष्टि में सभी जलते हैं।
प्रत्येक आज द्रष्टाको कोटिशः दृश्य रुचते हैं॥
हान्योपरान्त भी प्रमुदित जैसे तब था वैसे हूँ।
यद्यपि वह हृदय नहीं है पर हृदयहीन कैसे हूँ॥
अब बुद्धि चित्त सब गत है गुरुदेव ! जानते तुम हो।
फिर शिक्षा उपदेशादिक यों किसको देते तुम हो॥
मसजिद गिरजा गुरुद्वारे तजकर घुस यह मंदिर है।
न्यूनातिन्यून प्रस्तर है अधिकाधिक सुर सुन्दर है॥
सन्ध्या पूजा व्रत तर्पण तीर्थाटन व्यर्थ करा है।
इस पुण्य मार्गमें भगवन् तुमने क्या पाप भरा है॥
वह रूप गंध कोमलता वैसी ही चंचलता है।
सुन्दरी-तुल्य पाटलमें पर कब वह मादकता है॥
यमलोक दुखद है श्रुत है यदि कष्ट वहाँ पायेंगे।
तो उस दुखसे बचनेको मदिरा पीकर जायेंगे॥

मदिरा पीनेसे पहले रमणीय किसे कहता है ।
इस सुरा-सूर्यके रहते मुखचन्द्र हेय रहता है ॥
गुरुदेव ! मुझे समझा लो आनंद मुझे आता है ।
सौन्दर्य किन्तु उस स्त्रीका मनको कुछ समझाता है ॥
भारत, पुराण, रामायण वेदोंको जब लाता हूँ ।
सारी जनताके सम्मुख तेरा ही गुण गाता हूँ ॥
यमकी करणी भी मैं तो हाथोंसे कर लेता हूँ ।
बालाको काली लखकर निज हृदय नित्य देता हूँ ॥
जो कुंज मुझे रुचती है उसमें ही घर करता हूँ ।
उन्मत्त दशामें भी यों कर्तव्य स्मरण करता हूँ ॥
किस कणमें तुम बोलो तो उसका सौन्दर्य नहीं है ।
फिर अब यह भी कह डालो देखा भी उसे कहीं है ॥
एकान्त स्थान, निशि, मदिरा युवती हो, फिर यौवन हो ।
यज्ञोपवीत छूकर कह कैसा फिर तेरा मन हो ॥
मंदिर, श्मशान, तीर्थादिक सरिता वा सागर देखा ।
पानी, कीचड़ वा मिट्टी हड्डी वा पत्थर देखा ॥
भ्रूभंगी, चाल, सुघरता, श्रुति, दृष्टि तथैव गिरा है ।
मुझको सब बौराती हैं प्रत्येक क्रिया मदिरा है ॥
गंगासागर-संगमपर सागरवत् मैं भी खेलूँ ।
गंगाके प्रति इच्छा है बढ़कर अंकोंमें ले लूँ ॥
सौन्दर्य सुरा त्यागेंगे जो होना है सो होगा ।
हा ! अब वसन्त आनेपर इन शपथोंका क्या होगा ॥
प्रत्येक पुष्प पत्रोंपर है प्रेम-पुराण लिखित-सा ।
आया न कभी पढ़नेमें यह लख रह गया चकित-सा ॥
कहनेमें रुक जाते हैं फिर भी कहते ही रहते ।
हेमन्त-जरा ही को हम शिशुता वसंतकी कहते ॥
सुन्दर है कौन असुन्दर किसकी गति किसने पा ली ।
प्रत्येक पुष्प वसुधाका रखता है छटा निराली ॥
इस प्रेम-पंथमें शिक्षा है कौन किसे दे सकता ।
सारे ही उन्मादी हैं फिर सीख कौन ले सकता ॥
हा ! शीश भवनमें स्थित है स्तंभित अनुरक्त हुई है ।
अपनेको ही पर लखकर अद्भुत आसक्त हुई है ॥

है गन्ध नहीं पुष्पोंमें मेघोंमें नीर नहीं है।
क्या युग है ? रमणीके भी उरमें रति-पीर नहीं है ॥
सौन्दर्य-कथा सुनते ही आज भी चौंकनेवाला ।
यौवनमें सोचो होगा स्वामी कितना मतवाला ॥
बस मृत्यु-काल आनेपर यों सोच दुःख खोऊँगा।
हो गया पूर्ण पथ मेरा अब निज गृहमें सोऊँगा ॥
मेरी समाधिपर कोई सुन्दरी कभी मुसकाये।
तो मैं यह निश्चय कर लूँ इसने तो फूल चढ़ाये ॥
गुण रस्सी को कहते हैं अतएव सुगुण सुन्दर है ।
निर्गुण तो बँधा हुआ है दोनों में स्थित ईश्वर है ॥
नयनोंमें रहनेवाला नयनों के सम्मुख आया।
द्विगुणित आनन्द हमें तो लो आज प्रेममें आया ॥
पहले यदि परिचय रहता तो व्यर्थ आयु क्यों खोता ।
जो सबका हो जाता है वह नहीं किसीका होता ॥
घरमें बैठे-बैठे भी हो गये विश्वमें नामी।
बन गये दास भी उसके हा हन्त-हन्त ! यह स्वामी ॥
सुन्दरियोंमें हो तो हो अन्यथा कहाँ ईश्वर है।
तीर्थाटन करके देखा केवल पानी-पत्थर है ॥
आसक्ति तथा सुन्दरता से कौन भला बच पाया।
यह माया है ईश्वरकी यह परमेश्वर की छाया ॥
धनवानोंकी संगतिमें हमको कब दान मिला है।
उनके सेवक-मंडलमें कुछ-कुछ सम्मान मिला है ॥
दंडवत् प्रणाम नहीं है मग को जब चित सुझाता।
निज वक्ष-शक्ति-द्वारा ही तेरे चरणोंमें आता ॥
हा ! मोक्ष लाभ करके भी मेरी न हुई रक्षा है।
प्रेयसी-गेह आनेकी अब भी होती इच्छा है ॥
वेदादि शास्त्रमें देखो कहना तो यद्यपि मना है।
यह प्रेम-तत्त्व तो जगमें मेरे ही हेतु बना है ॥
व्यंग्य ही सही पर हो तो यह कहता आज हृदय है।
व्यवहार-ग्रहणमें उसका यदि प्रेम नहीं क्या भय है ॥
त्वच्चित्र तेरी तुलना क्या तुझसे न शब्द निकलता है।
वह दृष्टिपात करता है तुझसे अतएव भला है ॥

यदि प्रेम नहीं तव उरमें तो ले इतना ही कर दे।
मेरे इस शून्य हृदयमें थोड़ी पीड़ा ही भर दे॥
जग स्तब्ध हुआ किस छविसे इसकी जनता जितनी है।
बोलती नहीं वह यह भी किसकी इच्छा कितनी है॥
छाया प्रकाशसे होती फिर भी प्रकाशकी कब है।
वह ज्योतिर्मयी हुई है छाया गृहीत कब अब है॥
थे, हैं, अरु हुआ करेंगे क्या तैंने नहीं विचारी।
प्रत्येक जन्ममें हम तो तेरे प्रेमी सुकुमारी॥
तेरी स्मृतिका क्या वर्णन मेरी मति कर पाती है।
अश्रुवत् स्वयं आ-आकर स्वयमेव निकल जाती है॥
अन्योंके घर जाती है सो भी मेरे ही घरसे।
दुर्भाग्य देखकर मेरा नभसे सुराश्रु यों बरसे॥
प्रियतमे ! खिलौना है तू कब तुझे हृदय देता हूँ।
मैं अपने बाल हृदयको तुझसे बहला लेता हूँ॥
है ब्रह्मशाप उसपर जो तेरा प्रेमी हो जाये।
दुर्दिन कुमुहूर्त तभी है जब तव दर्शन हो जाये॥
सन्तोष क्यों न कर लेते इस बिन उपचार नहीं था।
बलि होकर नष्ट हुवे बिन कुछ सद्व्यवहार नहीं था॥
रमणी-रत होकर हमने कुछ ऐसी चोट सही हैं।
ईश्वर-रत भी होनेकी इच्छाएँ नहीं रही हैं॥
एकान्त पानमें यद्यपि आनन्द सदा आता है।
मद्यप-मंडल पूजाका सन्मान चला जाता है॥
सुन्दरियोंको यम भी तो लो धन्यवाद देता है।
समझे, सहायता इनकी बहुधा देखा, लेता है॥
कायर थे केश तुम्हारे रहते कपोलपर आगे।
मेरे चुम्बन करते ही पीछे हटकर ये भागे॥
यदि मृत्यु न मेरी होती तेरा यश होता कैसे।
ध्वंसोपरान्त भी तेरा निर्माण किया है ऐसे॥
दो घरमें एक समयमें कोई न कभी रह सकता।
पर-लोक लोक दो सुधरें मैं कब उपाय कर सकता॥
मुझको जो घाव लगा है वह मन ही कह सकता है।
पर बिन घावके कोई क्या जीवित रह सकता है॥

प्रतिद्वन्द्वीके घरसे क्या मैं उसको आज बुला लूँ।
यदि ब्रह्मलोकमें भी हो तो भी न दृष्टि मैं डालूँ॥
अब तो मेरी भी गणना उन्मत्तोंमें होती है।
तेरी मादकता फिर भी मेरे मदको खोती है॥
वैदिक मंत्रोंकी ध्वनिने कुछ रोचक अर्थ निबाहा।
यदि 'स्वा' कर ली है तुमने तो फिर करना होगा 'हा'॥
वह ऋतु वसन्तकी रजनी छतपर कैसे चढ़ते हैं।
भय हमें ओससे ही था अब तो पत्थर पड़ते हैं॥
संसार द्यूतशाला है यदि कभी तुझे पा लूँगा।
तो द्रुपदसुता-वत् तेरा भी दाँव लगा ही दूँगा॥
चरणोंपर कल पड़ती थी कुछ इसकी स्मृति न रही है।
सिरपर क्यों इसे चढ़ाया देखो क्या ऐंठ रही है॥
जिस शाखापर इच्छा हो कपिदेव तुरत चढ़ जाओ।
तव भार सह्य सबको है जो चाहे कला दिखाओ॥
मानो चाहे मत मानो 'दिन गये' यही कहते हैं।
अब तो इस पर्ण-कुटीमें केवल डाकू रहते हैं॥
तुझ ही को ढूँढ़ रहा हूँ प्रत्यक्ष सर्वगामी हूँ।
प्रत्येक रूपमें तेरा दर्शन कर अनुगामी हूँ॥
आमंत्रित हो प्रतिद्वन्द्वी तव प्रणय परीक्षण होवे।
आनंद तभी आए जब सिर धुन-धुनकर वह रोवे॥
बस एक बार जीवनमें सह शयन हुआ था उससे।
आजीवन तृप्त रहूँगा तद्गंध तथा तद्रससे॥
प्रेयसी-गेहमें भी मैं क्या कुछ उससे डरता हूँ।
पर-पुरुष कथा सुनते ही पर-स्त्री वर्णन करता हूँ॥
मम श्राद्ध समय विप्रोंने कर कृष्ण वस्त्र तनपर धृत।
तव केश-राशिसे मेरा कर दिया मरण-सा घोषित॥
तुम मिलन-रात्रिमें मिल लो यह कृपा नित्य सह लेता।
हाँ, विरह-दिवसमें मिलते तो धन्यवाद दे देता॥
किस भाँति कहें हम उनकी स्मृतिमें न कभी आवेंगे।
हम-सा सात्विक प्रेमी वे क्या इस जगमें पावेंगे॥
भौतिक सुखकी इच्छा है सुन्दरियोंसे कह देता।
वास्तविक प्रेम करता तो ईश्वरसे ही कर लेता॥

लो, मिलन निशामें भी वह हमसे यों ही कहती हैं।
छेड़ोगे तो रूठेंगे हम यही नहीं सहती हैं॥
भीषण था नयन विशिख भी जगतीने उसे सराहा।
हा भी न कह सका मैं तो उसने कर डाला स्वाहा॥
आ गया काल है सिरपर इच्छा पूरी कर खेलूँ।
बस तव दर्शन हो जावे तो अपना पथ मैं ले लूँ॥
यह हृदय स्वयं हृत होता अन्यथा कौन हरता है।
यह लक्ष्य आप बनता है सन्धान कौन करता है॥
प्रतिद्वन्द्वीके कर डाले आई समाधिपर मेरे।
गड़नेवाला जल जावे क्या यह प्रतीति है तेरे॥
कोकिल मयूरकी शोभा क्या देख-देख बौराये।
ये जिनके गायक नर्तक हैं पुष्प न सो लख पाये॥
कैलास, क्षीरसागरमें मत ले चल यों आतुर हो।
ऐसा न कहीं हो भाई ! तुझको मुझको दुर-दुर हो॥
आसन प्रत्याहारादिक पातंजलिने सिखलाया।
मेरी समाधिमें भी वह आई तो योग लजाया॥
अप्सरा आज इस वनको पंखोंसे झाड़ रही है।
सम्भवतः उन्मादीकी वह बाट निहार रही है॥
वक्षस्थल ढककर चलना वा कर ही मलवाओगे।
हम कर मलकर रह लेंगे तुम तो नित पछताओगे॥
साम्राज्यवादसे देखो उन्मादवाद क्या कम है।
दश-दश सम्राट् मिले हैं दो उन्मादीमें यम हैं॥
यौवनमें क्या सुकुमारी यह काल विकट होता है।
दुष्टता प्रथम आती है साहस पीछे होता है॥
संन्यास लिया सपनेमें इसका फल अब यह होगा।
तरुणीसे परिणय होगा वा रतिका अभिनय होगा॥
किसने किस दिवस किया था पुष्करमें पद - प्रक्षालन।
बुदबुद् रूपी निज शिरको यह पटक करै आवाहन॥
मेरे जैसे कर्मीको जब मखकी स्मृति आती है।
संन्यास कमंडलुको भी हिचकी-सी आ जाती है॥
स्वामी ! यदि सुरा न पी है तो क्यों बकता फिरता है।
यदि प्रेमी नहीं हुआ तो क्यों पग रखते गिरता है॥

दुख दे, सुख दे, दोनों दे प्रतिक्षण आसक्त रहा हूँ।
क्या करूँ यही भावी है इससे ही खेल रहा हूँ॥
कामकी शपथ देता हूँ मेरा भी काम निभा दे।
निष्काम तुरन्त बनूँगा कामिनी काम रचवा दे॥
जब भाग्य फिरा होता है तब किसका वश चलता है॥
रह जाते स्तब्ध सुमन हैं जब पुष्प-बृक्ष हिलता है।
है साम्य प्रेममें सबमें यह ही गुण हम तकते हैं॥
ज्ञानी, राजा, व्यापारी तपसी भी कर सकते हैं।
जबतक वह कहे न ले लो मैं हूँ प्रसन्न मुँह धो लूँ॥
मैं मानी हूँ बोलो तो तबतक चुम्बन मैं क्यों लूँ।
निष्प्राण बना प्राणोंको वह प्राण-प्रिया ले लेगी।
जब चाहे जितना चाहे देती लेती खेलेगी॥
सुन्दरियोंमें भी रत हो प्रेमीने मोक्ष गहा है।
डूबा था कहाँ बिचारा अब भला कहाँ निकला है॥
भागवत तथा रामायण अब कौन पढ़ा करता है।
अब तो सब जग अपना ही रति-गान किया करता है॥
नासिका स्तम्भके ऊपर भ्रूका जब जगमोहन है।
तब फिर प्रणाम करनेका मंदिरमें किसका मन है॥
प्रेमीका शव मरघटसे लाकर समाधिमें डाला।
फिर भी धूआँ ही निकला इतनी थी उरमें ज्वाला॥
वाल्मीकि, व्यास वा दंडी मर गये अस्तु हो जो हो।
कवि शब्द आजके दिन तो सार्थक मुझपर हो तो हो॥
दिनमें भी कुछ देखा है रहते चकोर क्यों सुखसे।
भ्रान्ति ही उन्हें रहती है मम चन्द्रमुखीके मुखसे॥
होते न विश्वमें प्रेमी तो अन्धकार ही रहता।
सुन्दरियोंको इस जगमें तब कौन पूछ था सकता॥
महिसे बस ब्रह्म-भवनतक शंसित सौन्दर्य तुम्हारा।
मिथिलामें राम भले तो बरसाने कृष्ण बिचारा॥
हा ! विरह-निशामें 'हा' कर क्यों नाम ले रही मेरा।
क्या अपना प्रेम प्रकट कर अपनाम कर रही मेरा॥
सुन्दरियोंसे, ईश्वरसे सिद्धियों तथा लोकोंसे।
खोकर तेरी शिक्षाने मरवा डाला शोकोंसे॥

जाने न तुम्हें दूंगा मैं सुनता भी नहीं तुम्हारी।
क्यों अपनी बात बनाकर खोते हो बात हमारी ॥
प्रति चुम्बनपर सौ गाली अपराध बिचारो अपना।
प्रति गाली शत चुम्बन लूँ तब मान बनेगा सपना ॥
संन्यासीसे मद्यपसे परिचय पर्याप्त रहा है।
उसका अनुगमन किया है उसका अनुकरण किया है॥
सौन्दर्य प्रेमका जितना तुमको विचार रहता है।
बोलो, क्या ईश्वरका भी इसमें प्रचार रहता है॥
उत्तर नकारमें मत दे अच्छा हो मौन बना रह।
मेरा ही प्रश्न बना रह चाहे तो सदा मना रह॥
मध्यमें तुम्हारे मेरे यह बार-बार है आता।
कुविचार वीर कितना है थककर भी चलता जाता॥
कल चित्रगुप्तने मुझको यमदूतों सहित कहा था।
निष्पाप रहा क्यों ईश्वर क्या अब न कृपालु रहा था॥
सात्विकता यों कहती है यौवनके आ जांने-पर।
अब तो मैं जाती ही हूँ आऊँगी बुलवानेपर॥
मिल जाय प्रेमकी पीड़ा मैं अभी लिये लेता हूँ।
निज प्राण मूल्य हृद्वत् ही बस तुरत दिये देता हूँ॥
दंडी भी मुझ प्रेमीकी संगतिसे सन्त कहाया।
मानवता उसमें आई उसने भी हृदय दिखाया॥
यदि प्राण आज बिकते हैं तो क्या आश्चर्य हुआ है।
जो प्रेम क्रीत करते हैं उनका तो नाम बिका है॥
उपदेशक श्वान हुआ है देखो क्या अभी कहा है।
प्रेमने रुधिर पी डाला हड्डी यह चाब रहा है॥
सब जान बूझकर छोड़ा उन्मत्त नहीं हो छोड़ा।
नित्य भी समझकर मैंने गृह परिजनसे मुँह मोड़ा॥
अभिलाषाएँ इच्छाएँ सब भाव विचार गये हैं।
हम भी अब जाते ही हैं जब अपने भार गये हैं॥
मैं निज उन्माद दिखाकर सुन्दरियोंको चकराता।
वक्षसे चिपट जाता हूँ फिर चरणोंमें पड़ जाता॥
सद्भाव गया यों जगसे, मानों यह कभी नहीं था।
सुन्दरियाँ यों कहती हैं देखा भी कभी कहीं था॥

गौघाट (पुष्कर) सं० १९८४